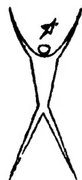
रामराज्य और मार्क्सवाद

करपात्री जी की पुस्तक 'मार्क्सवाद और रामराज्य' की एक समीक्षा



राहुल सांकृत्यायन



पोपुल्स पब्लिशिंग हाउस (प्रा.) लिमिटेड
रानी झांसी रोड, नई दिल्ली १

पहला संस्करण : जनवरी, १९५९

मूल्य सवा रुपया

डी. पी सिन्हा द्वारा न्यू एज प्रिंटिंग प्रेस, रानी झांसी रोड, नई दिल्ली
में मुद्रित और उन्हीं के द्वारा पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस (प्रा.) लिमिटेड,
नई दिल्ली की तरफ से प्रकाशित।

विषय-सूची

दो शब्द

करपात्री जी ने "मार्क्सवाद और रामराज्य" के नाम से संवत् २०१४ (१९५७ ई.) में आठ सौ सोलह पृष्ठों की एक बड़ी पुस्तक प्रकाशित करायी है, जिसके बारे में उसके आरम्भ में लिखा है कि महाराज ने ग्रंथ संस्कृत में लिखा था, जिसका अनुवाद बम्बई के श्री वासुदेव व्यास ने हिन्दी में किया। करपात्री जी बीसवीं सदी के नहीं हैं, वह सहस्रों या अपने लिखे अनुसार करोड़ों-अरबों वर्ष पुराने जगत के मानव हैं, उस समय के मानव जब कि पृथ्वी शायद सूर्य-पिंड से अलग भी नहीं हुई थी। जो निराकार निष्कर्म ब्रह्म के अतिरिक्त सभी वस्तुओं को भ्रम मानता है, उसके लिए यह मान्यता स्वाभाविक ही है।

करपात्री जी ने विश्वनाथ मन्दिर में हरिजनों के प्रवेश न करने देने के लिए जो महान यज्ञ ठाना था, उसमें कानून की अवहेलना करने के कारण उन्हें जेल जाना पड़ा। इसी समय लेखनी ने उनके हाथ में आकर यह चमत्कार दिखलाया। बेचारे जेल में भी भक्तों के कारण निश्चिन्त नहीं रह सके; "जेल अधिकारियों ने बहुत सी सुविधाएं दे रक्खी थीं। दिन भर दर्शनार्थियों का तांता लगा रहता था।" जेल में भी अधिक अवकाश न मिल पाता था। जेल के अधिकारी क्या, देव-महादेव भी ऐसे धर्मप्राण नेता को सुविधाएं देने के लिए लालायित हैं। असुविधाएं तो केवल कम्युनिस्टों के लिए हैं, जिनको दिल्ली के महादेव से लेकर छोटे-बड़े सभी देव बुरा-भला कहने और हर समय जेल में बन्द करने के मौके की तलाश में रहते हैं।

पुस्तक से जिन ग्रन्थों और साहित्य के अध्ययन का पता लगता है, वह सतयुगी महात्मा की शक्ति के बाहर है। ऐसा मालूम होता है कि इसमें चेलों ने भी पूरी सहायता की है। सभी पन्नों का गुरू के नाम से

प्रकाशित होना अनुचित नहीं है। अद्वैतवाद में गुरु-चेला का भेद नहीं है। ऋषीकेश के एक पहुंचे हुए महात्मा इसके लिए पथ-प्रदर्शन कर रहे हैं। उनके चेले हिन्दी-अंग्रेजी में जो कुछ लिखते हैं, सब गुरु जी के नाम से प्रकाशित होता है।

"कोई योजना बनाकर क्रम से उन्होंने पुस्तक नहीं लिखा।... सामग्री क्रमबद्ध करने की कठिन समस्या खड़ी हो गयी।" (पृष्ठ ४) ग्रन्थ में अधिक पुनरुक्ति भी इसी बात को सिद्ध करती है। "पुस्तक समाप्त करने की दृष्टि से ही १९५६ का चातुर्मास्य काशी में किया गया।" काशी ने यदि विश्वनाथ मन्दिर से महाराज को वंचित किया, तो कम से कम 'आंख के अंधे गांठ के पूरे' सेठों के लिए यह पुस्तक तैयार करवा डाली। 'कल्याण' सम्पादन विभाग के श्री जानकीनाथ शर्मा तथा 'श्री धर्म संघ शिक्षा मंडल' के श्री हरिहरनाथ त्रिपाठी ने "बड़े परिश्रम से सामग्री क्रमबद्ध करने का प्रयत्न किया।"

प्रकाशन की कोई समस्या उठ ही नहीं सकती थी जब कि सेठों की यह बाइबल उनके सामने थी। "गीता प्रेस, गोरखपुर ने पुस्तक छापने की इच्छा प्रकट की।" (पृष्ठ ४) अच्छे कागज पर सुन्दर टाइप में ८१६ पृष्ठ की डिमाई साइज की कपड़े की जिल्दवाली पुस्तक का दाम कोई भी प्रकाशक दस-बारह रुपये से कम न रखता। पर इस पुस्तक का मूल्य केवल चार रुपया है। अतः इसका प्रकाशन विशेष प्रयोजन से हुआ है। वस्तुतः इसका मूल्य एक ही रुपया होना चाहिए था। सेठों के "धर्मादा" में रुपये की कमी नहीं है। तीन हजार की जगह तीस हजार का संस्करण होना चाहिए था। प्रस्तावना लिखनेवाले श्री गंगाशंकर मिश्र का मत है : "अभी तक कोई ऐसी पुस्तक उपलब्ध नहीं है, जिसमें प्राच्य और पाश्चात्य आधारभूत सिद्धान्तों का इतना सूक्ष्म और विस्तृत विवेचन किया गया हो।... यह बहुत आवश्यक है कि इस पुस्तक का अंग्रेजी में अनुवाद निकाला जाय, जिससे विदेशी विद्वान् और ऐसे भारतीय विद्वान् भी — जो हिन्दी नहीं जानते — लाभ उठा सकें।" आशा है, मिश्र जी की इस इच्छा को भी सेठ अधूरी नहीं रखेंगे। मिश्र जी ने लिखा है कि "सत्य के अन्वेषक इस पुस्तक के लिए

श्री स्वामी जी महाराज के सदा ऋणी रहेंगे।" (पृष्ठ ६) इससे उलटे सत्य के अन्वेषकों को इसे पढ़कर घोर निराशा होगी, क्योंकि यहां सेठों के हित के समर्थन में सत्य-असत्य का कोई भेद नहीं किया गया है। पुस्तक का मूल लक्ष्य मार्क्सवाद का विरोध करना है, और इसका कारण "आमुख" के शब्दों में "साम्यवाद" है "जिसकी आज सर्वाधिक चर्चा है...!" पूरी पुस्तक में रामराज्य की चर्चा तो सारे हल्ले-गुल्ले के बाद भी बहुत कम सुनने में आती है। करोड़ों वर्ष का पुराना हो गया यह वाद देश में कभी गम्भीर चर्चा का विषय बनेगा, इसकी आशा भी नहीं की जा सकती। तो भी ग्रन्थ दिलचस्पी से खाली नहीं मालूम होगा — यदि किसी के पास इतना धैर्य और समय हो। इस हिन्दी पुस्तक में भी संस्कृत के कठिन शब्दों की भरमार है। इसलिए असंस्कृतज्ञ हिन्दी पाठक कभी चार पृष्ठ भी धैर्य से पढ़ने में समर्थ नहीं होंगे। इससे तो अच्छा होता कि पुस्तक संस्कृत में ही होती। इससे एक ओर संस्कृत के विद्वानों को आसानी होती और हजारों दूसरे पाठक व्यर्थ के परिश्रम से बच जाते।

पुस्तक में विधवा स्त्रियों के जिन्दा जलाने — सती-प्रथा — का समर्थन किया गया है। हजार वर्ष पहले नहीं, बल्कि हाल में गुजरे अन्ध-युग की तरह लड़कियों को बचपन में ही ब्याहने पर जोर दिया गया है। यह मनवाने की कोशिश की गयी है कि वे पर्दे और घर के भीतर ही बनी रहें। शूद्रों और दासों पर भी महाराज बहुत द्रवित हुए हैं। दास-प्रथा का अनुमोदन करते हुए कहते हैं कि वह तो परिवार का एक आदमी होता था, जिसके खाने-कपड़े की जिम्मेदारी मालिक अपने ऊपर लेता था। आखिर गाय-बैलों की जिम्मेदारी भी तो मालिक अपने सिर पर लेता है, और साथ ही उनके बछड़ों को मनमानी तौर से बेच देने की जिम्मेदारी भी उसी की है! १६२४ में नेपाल में दास-दासियों (कमारा-कमारियों) की मुक्ति हुई। करपात्री जी उस समय वहां नहीं हुए, नहीं तो वह अपने सनातन धर्म की रक्षा के लिए वहां भी उसी तरह धरना देते जैसे विश्वनाथ मन्दिर में हरिजनों के प्रवेश पर उन्होंने किया था। वहां के ५६,८७३ दास-दासियां महाराज के "सनातन धर्म" पर

लात मारकर मुक्त हो गये और ऐसा कोई माई का लाल नहीं हुआ जो चन्द्र शमशेर के खिलाफ आवाज उठाता।

महाराज को भगवान की ओर से उच्च बनाये गये व्यक्तियों का ही शासन पसन्द है। इसके बारे में आगे यथास्थान लिखा जायगा। "मुंड गिनना", अर्थात् वयस्क मताधिकार, उनके लिए घृणा की चीज है। वह सतयुग को लौटाना चाहते हैं, लेकिन कलियुग उसमें भारी बाधक है। दलितों के एक बड़े नेता तथा पार्लियामेन्ट के सदस्य श्री एन. शिवराज ने २७ अप्रैल, १९५८ को कानपुर की एक सार्वजनिक सभा में भाषण करते हुए कहा था : "हमें देश में एक महान् परिवर्तन लाना है। वह परिवर्तन होगा भारत की ८० फी सदी जनता के हाथों में... सच्चे स्वराज्य को सौंपकर आजादी की नींव को मजबूत करना। भारत में बसनेवाले दस करोड़ इन्सान—जिन्होंने सदियों से नाना प्रकार के उत्पीड़न सहे हैं—आज भी अनुसूचित (हरिजन) जातियों के नाम से बद से बदतर हालत में होते जा रहे हैं। लगभग छः करोड़ जनता शिड्यूल्ड ट्राइब (अनुसूचित जन-जाति) के नाम से मुसीबतों के दिन गुजार रही है। लगभग १२ करोड़ पिछड़े वर्ग के कहे जानेवाले लोगों की हालत आज भी अच्छी नहीं है। . आखिर इतनी बड़ी संख्या के ये लोग, जिनको बालिग मताधिकार भी प्राप्त है, क्यों नहीं आबादी के अनुपात से सरकारी स्थानों पर पाये जाते या रखे जाते ? इनका सही प्रतिनिधित्व क्यों नहीं हो पाता ?... बहुसंख्यक को अल्पसंख्यक बना डाला गया और अल्पसंख्यक लोग बनिये की दूकान से लेकर व्यापार, नौकरी और अफसरों की जगहों पर, गांवों से लेकर राजधानी दिल्ली तक, छाये हुए हैं। अधिकांश लोगों को रात-दिन कड़ी मेहनत करने पर भी भर-पेट भोजन नहीं मिलता और थोड़े से लोग बिना काम किये मौज उड़ा रहे हैं। बहुजन समाज को इन्हीं थोड़े से लोगों ने अनपढ़-अपंग बनाकर गुलाम और गुलाम से बदतर बना रखा है।" ("मध्यम मार्ग," ११ मई, १९५८)।

करपात्री जी अभी बहुजन के रोष को नहीं जानते। उसे देखना हो तो उन्हें मद्रास प्रदेश की सैर करनी चाहिए। वहां भी सनातन धर्म

के नाम पर हजारों वर्षों से तीन प्रतिशत ब्राह्मणों ने सब कुछ हड़प रखा था और ९७ प्रतिशत को शूद्र और अतिशूद्र की संज्ञा देकर उन्हें नरक की जिन्दगी बिताने के लिए विवश किया था। बहुजन को इस धोखे-धड़ी का पता लगते देर नहीं लगी, और अब वे ब्राह्मण के नाम से ही घृणा करने लगे हैं। करपात्री जी तथा उनके चेलों की हठधर्मी हमारे यहां भी इस प्रकार की कटुता का बीजारोपण कर सकती है। महाराज को यह मालूम होना चाहिए कि जिनके अधिकारों पर प्रहार करने के लिए वह खंगहस्त हुए हैं, उनकी संख्या सौ में ८० है। महाराज की वाणी बहरे कानों में पड़े, इसीमें उनकी भलाई है।

पुस्तक का उत्तर भी उसी तरह के बड़े पोथे में लिखने की आवश्यकता नहीं है। इसके सिद्धान्तों का उत्तर मेरी पुस्तकों — "विश्व की रूपरेखा," "मानव समाज", "वैज्ञानिक भौतिकवाद", "भागो नहीं दुनिया को बदलो", "आज की राजनीति" आदि में आ गया है।

राहुल सांकृत्यायन

मसूरी

२४-५-५८

: १ :

करपात्री जी का ऋषित्व

करपात्री जी ऋतंभरा प्रज्ञा को सबसे बड़ा प्रमाण मानते हैं, जिसके बल पर पुराने ऋषियों ने भूत-भविष्य-वर्तमान की सभी चीजों को देखकर महाभारत, रामायण, पुराण जैसे महान ग्रंथ लिखे। ऋतंभरा प्रज्ञा से भिन्न साधनों द्वारा जो ज्ञान प्राप्त है, वह भ्रान्त है। इस मान्यता के आधार पर उन्होंने अपने ग्रंथ में जगह-जगह विचार प्रकट किये हैं। इसे एक ऋषि का ऋषित्व समझना चाहिए।

१. ह्रास का युग

महाराज शास्त्रों के मर्म को समझाते हुए कहते हैं : "ऋषियों का ज्ञान आज से कहीं बढ़ा हुआ था, उनके संनिकृष्ट, विप्रकृष्ट, लोक, परलोक, अस्त्र, शस्त्र, विमान आदि के विज्ञान तक अभी भी भौतिक वैज्ञानिक नहीं पहुंचे हैं।" (पृ. ३५)

"शास्त्रीय दृष्टि से तो विकास की अपेक्षा ह्रास-पक्ष ही संगत जंचता है।" (पृ. १६६)

"भूगर्भ की जांच से यह नहीं सिद्ध होता कि ज्ञान की क्रम से उन्नति हुई है।" (पृ. २०३)

"दिल्ली की लोहे की लाट भारत में ही बनी, पर क्या आज यूरोप भी वैसी लाट बना सकता है।" (पृ. २०३)

करपात्री जी अपने पूर्वज परशुराम की तरह उग्र रूप धारण किये हुए हैं। उनके सामने साइंस की एक भी नहीं बन सकती। भूगर्भ शास्त्र,

पुरातत्व, पुराजीव शास्त्र, भौतिकी, रसायन आदि ऋतंभरा प्रज्ञा के सामने किस खेत की मूली हैं ? वह कहते हैं :

"पूर्वजों की बुद्धि शक्ति की तुलना में आज की बुद्धि शक्ति का अत्यंत ह्रास हो गया है।" (पृ. २३६)

फिर हमारे पूर्वज "अस्त्र, शस्त्र, विमान आदि" के बनाने में यदि आज से बहुत आगे हों, तो क्या आश्चर्य ! वह डेढ़ टन का स्पुत्निक आकाश में नहीं छोड़ते थे। विश्वामित्र ने तो आकाश में एक पूरा लोक बनाने का निश्चय कर लिया था। महाराज सिर्फ बुद्धि ही नहीं, बल्कि आकार आदि में भी पहले के प्राणियों को विशाल मानते हैं :

"पशुओं, मनुष्यों की भी जैसी बुद्धि, शक्ति, आकार, बल-पराक्रम हजारों वर्ष पहले था, उससे आज ह्रास ही है। मनुष्यों के पुराने अस्थि-पंजर तथा प्रचीन तलवारों और भालों के बृहत् आकार इसके साक्षी हैं।" (पृ. ४६३)

मनुष्यों के इतने विशाल अस्थि-पंजर तो वैज्ञानिकों को भी नहीं मिले हैं, जिन पर "योजन चार मोंछ रहि ठाढ़ी" कहा जा सके। किसी गप्पी की बात पर विश्वास करके करपात्री जी कह उठे हैं :

"नेवादा में जान टी. रीड को एक आदमी का पदचिह्न और एक अच्छी तरह बना हुआ जूते का तला मिला है, जिसे वह अपने चट्टान-विषयक भूगर्भ-विद्या-सम्बंधी ज्ञान से ५० लाख वर्ष पुराना बतलाता है।" (पृ. १६८)

यहां महाराज ने यह बतलाने का कष्ट नहीं उठाया कि ५० लाख वर्ष पुराना जूते का यह तल्ला कितने हाथ लम्बा है।

ऋषि करामती हुआ करते थे और वह सब कुछ कर सकते थे क्योंकि :

"**ऋषीणां पुनराद्यानां वाचमथोऽनुधावति।**" वे यदि घट को पट कहें, तो घट को पट होना पड़ता है। (पृ. २२१)

फिर आविष्कार करने की आवश्यता क्या ? वह हवा से कहते कि विमान हो जा, तो वह विमान बनने के लिए मजबूर है। फिर विमान यात्रा पर खर्च भी न होता, न भक्तों को हवाई जहाज का टिकट ही

खरीदना पड़ता। किसी समय पात्र भी पास न रखकर कर में भिक्षा करनेवाले महाराज अब समय की बचत के लिए हवाई जहाज की यात्रा अधिक पसन्द करते हैं।

जिस तरह अणु और उदजन बम के दुष्परिणामों और खतरों को देखकर आज मानवता पुकार रही है कि इनके परीक्षण बन्द किये जायें, इनकी संचित राशि नष्ट कर दी जाय, उसी तरह की बात जन-कल्याण के लिए ऋषियों ने पुराने यंत्रों के बारे में कही थी :

"कल-कारखानों के विकास के बिना भी प्राचीन भारत में आध्यात्मिक, धार्मिक, सामाजिक विकास उच्च कोटि का हुआ था। यद्यपि महायन्त्रों का विकास प्राचीन काल में भी हुआ था, तथापि उसका दुष्परिणाम देखकर उसे उपपातक निश्चित कर उस पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया। फिर भी विशिष्ट शस्त्रास्त्र, विमान, रथ तथा शिल्प कलादि का विकास, विश्वकर्मादि द्वारा होता ही रहा।" (पृ. ५३७)

महायन्त्रों पर प्रतिबन्ध लगाया गया था, इसका पता यदि प्राचीन शास्त्रों से न मिलता हो तो महाराज के संतोष के लिए यही समझना चाहिए कि उक्त वाक्य या ग्रन्थ लुप्त हो गये। लेकिन करपात्री जी की ऋतंभरा ने इस सत्य को खोज ही निकाला। आखिर ऋतंभरा प्रज्ञा है किस मर्ज की दवा ?

२. सच्चा इतिहास

करपात्री जी का मत है : "पाषाणादि युगों की कल्पना ही निराधार है।" (पृ. २०३)

कभी झूठ न बोलनेवाली पृथ्वी माता ने अपनी गोद में छिपाये प्रमाणों को देकर जिसकी सत्यता को सारे भूमण्डल के विद्वानों से मनवाया, वह निराधार है और "मुखमस्तीति वक्तव्यं" का अनुसरण करनेवाले की कल्पना साधार है !

और सुनिये :

"कितने ही शिलालेख तो काल्पनिक ही हैं।" (पृ. २११)

"प्रायः आजकल के इतिहास दुरभिसन्धि एवं भ्रान्तिपूर्ण होते हैं।... किसी सिक्के या खण्डहर आदि के आधार पर ऐतिहासिक कल्पनाओं का महल खड़ा कर दिया जाता है।... ऋतंभरा-प्रज्ञायुक्त ऋषियों के इतिहास अवश्य प्रामाणिक कहे जा सकते हैं। वे समाधि के द्वारा... वस्तुओं का साक्षात्कार कर सकते हैं।" (पृ. २४३)

खण्डहरों, सिक्कों और शिलालेखों से कितनी आसानी से छुट्टी मिल गयी, और सच्चे इतिहास के ज्ञान का रास्ता कितना सरल और साफ कर दिया गया! भारत के इतिहासवेत्ताओं, विश्वविद्यालयों और कालेजों के इतिहास-अध्यापकों को सब कुछ छोड़ महाराज की शरण में जाना चाहिए। उनकी ऋतंभरा प्रज्ञा की यदि एक बूंद भी उन्हें मिल गयी तो वे निहाल हो सकते हैं। ज्यादा तरद्दुद में पड़ने की भी आवश्यकता नहीं। वह अपने इस महान् ग्रन्थ द्वारा रास्ता बतला रहे हैं:

"अपौरुषेय वचन (वेद) स्वतंत्र रूप से प्रमाण होते हैं।... धर्म, ब्रह्मादिग्रहण में वेदादि शास्त्र स्वतंत्र प्रमाण होते हैं।" (पृ. २१७)

"रामायण, महाभारत आदि आर्ष इतिहास के लेखक वाल्मीकि, व्यास आदि ऋषि प्रत्यक्षानुमान या सम्वाददाताओं के तारों, पत्रों के आधार पर नहीं, किन्तु समाधिजन्य ऋतंभरा प्रज्ञा के अनुसार घटनाओं को पूर्णतया जानकर इतिहास लिखने में संलग्न हुए थे।" (पृ. ४२४)

"...अध्यात्मवादियों की धरित्री और उसका इतिहास सहस्रों-लक्षों नहीं अपितु अरबों वर्षों के हैं।..." (भोजकृत) "'समरांगण सूत्रधार' (के अनुसार) राज्यधर तक्षा (बढ़ई) द्वारा निर्मित वायुयान एक कील के आघात से आठ सौ योजन चल सकता था।... 'रामायण' 'महाभारत' के अनुसार बहुत विशाल पुष्पकयान आधुनिक सभी वायुयानों से अधिक विशाल, कलापूर्ण, द्रुतगामी तथा निरापद था। ब्रह्मास्त्र, पाशुपतास्त्र आदि अस्त्र-शस्त्रों का मुकाबिला तो आधुनिक हाईड्रोजन बम से करोड़ों गुना अधिक घातक अस्त्र बनाया जाय, तो भी नहीं किया जा सकता।" (पृ. ४४२)

"रामायण-महाभारत का इतिहास समाधिजन्य ऋतंभरा प्रज्ञा पर आधारित है। वह तार, टेलिप्रिन्टर के आधार पर या अटकलों के आधार

पर नहीं बना, और न किसी मूर्ति, शिलालेख, स्तम्भों अथवा मुद्राओं के आधार पर ही बना है।" (पृ. ४५३)

करपात्री जी के अनुसार मूर्तियों, शिलालेखों, मुद्राओं के आधार पर रचित आजकल का इतिहास कितना थोथा है, यह उनकी इस वाणी से मालूम हो जाता है :

"संसार के सबसे प्राचीन इतिहास महाभारत और रामायण हैं, जिनकी बहुत कुछ सत्यता मोहन-जो-दड़ो तथा हरप्पा के भूगर्भ से मिली हुई वस्तुओं से सिद्ध होती है। उन आर्ष इतिहासों एवं अपौरुषेय वेदादि शास्त्रों से सिद्ध है कि न केवल मनुष्यों में ही किन्तु देवताओं, पशुओं, वृक्षों में भी ब्राह्मण आदि भेद सृष्टिकाल से ही है।" (पृ. ४६४)

मोहनजोदड़ो-हड़प्पा के भूगर्भ से महाभारत-रामायण के इतिहास के समर्थन में कौन सी चीजें मिली हैं, इसके बारे में हमारे इतिहासवेत्ता कितने भ्रम में हैं, महाराज के सत्यवचन से यह मालूम हो जाता है।

महाराज फिर फरमाते हैं :

"वर्तमान सृष्टि का ही इतिहास अरबों वर्षों का है ...।" (पृ. ५१७) और भी :

"वेदों, रामायण, महाभारत तथा पुराणों में करोड़ों-अरबों वर्षों एवं अगणित युगों, कल्पों तथा विभिन्न सृष्टियों के इतिहास हैं।" (पृ. ५५५)

यह वस्तुओं और मनुष्यों का ही इतिहास नहीं बतलाता। आर्ष इतिहास का प्रयोजन इससे भी अधिक है :

"लाखों-करोड़ों वर्ष का इतिहास वस्तुतः ईश्वरवाद का ही समर्थक है। ईश्वरवादियों ने ही बड़ा-बड़ा पुरुषार्थ किया है। समुद्र में सौ योजन का पुल ईश्वरवादियों ने ही तैयार किया है। अखण्ड भूमण्डल का साम्राज्य, पुष्पक विमान जैसे वायुयान, हाइड्रोजन बम से करोड़ों गुना अधिक शक्तिशाली ब्रह्मास्त्र, पाशुपतास्त्र ईश्वरवादियों ने ही प्रकट किये हैं। मनुष्यों के अतिरिक्त दिव्य शक्तियों (देवताओं, भूत-प्रेतों) के साथ प्रत्यक्ष व्यवहार भी उन्होंने ही किया है।" (पृ. ५५८)

"परलोक-विद्यावालों की दृष्टि से प्रेत-तत्व की सिद्धि होती है।" (पृ. ५६७)

करोड़ हाइड्रोजन बमों के बराबर शक्ति एक ब्रह्मास्त्र रखता था। उसके छोड़ने पर तो हमारी पृथ्वी पर एक भी प्राणी बचा न रहता। शायद उस अस्त्र को ऋषियों ने रेडियो-सक्रिय नहीं होने दिया था, जो आज भी सम्भव नहीं।

३. संस्कृत सब भाषाओं की जननी

"सर्व प्राचीन भाषा संस्कृत भाषा ही सिद्ध होती है।" (पृ. २००)

"जब संस्कृत भाषा एवं वेद से पुरानी पुस्तक संसार में उपलब्ध नहीं है, इसकी अतिप्राचीनता तर्कों से भी सिद्ध होती है, तब मनु आदि के अनुसार उसे ही अनादि भाषा मानना युक्त है।" (पृ. २०७)

"...संस्कृत भाषा ही आदिम भाषा है, और उसका अपभ्रंश अन्यान्य भाषाएं हैं।...आर्य, सेमेटिक और पुरानी भाषाएं एक ही परिवार की हैं।... जब सबके मूल पुरुष एक थे, तब आदि ज्ञान एवं आदि भाषा का भी रूप एक ही होना चाहिए।" (पृ. २०६)

महाराज ने वेद की महिमा और उसकी भाषा के गौरव को कितनी अच्छी तरह समझाया है। आज के भाषा-तत्वज्ञ अन्धेरे में हाथ-पैर मार रहे हैं। ऋतंभरा प्रज्ञा से वंचित जो ठहरे!

४. मानव-सृष्टि भारत में हुई

वेद की भूमि—भारत—दुनिया में अपना सानी नहीं रखती। महाराज ने क्या खूब कहा है:

"सप्तद्वीपा मेदिनी में जम्बूद्वीप श्रेष्ठ है, और जम्बूद्वीप में भी भारतवर्ष ही सर्वोत्कृष्ट है।... इसी में सभी रंग के मनुष्य भी मिलते हैं, अतः यहीं मनुष्यों की उत्पत्ति हुई है।" (पृ. २००)

".. हिमालय के मानस स्थान पर मानसी सृष्टि हुई, इसीलिए उसका नाम मानस पड़ा है।... एशिया एवं तदन्तर्गत भारत में ही मनुष्य की सृष्टि सिद्ध होती है। वैवस्वतमनु को हुए अब तक (संवत् २०१३ में)

१२ करोड़ ५ लाख ३३ हजार ३० वर्ष होते हैं, परन्तु सृष्टि उनसे भी पहले की है। अतएव सृष्टि को हुए १ अरब ६५ करोड़ ५८ लाख ८५ हजार ५७ वर्ष माने जाते हैं।" (पृ. २०२)

महाराज को शायद मालूम नहीं है कि जम्बू द्वीप वाला भूगोल अब गलत साबित हो चुका है। ऋतंभरा प्रज्ञा से प्राप्त ऋषियों के भूगोल ज्ञान के अनुसार पृथ्वी के बीचोबीच सुमेरु पर्वत सैकड़ों योजन ऊंचा खड़ा था, जिसके चारों तरफ समुद्र की परिखा थी। उस परिखा के किनारे क्रमशः और भी समुद्र तथा पर्वत की मेखलाएं थीं। सातवां समुद्र हमारा यह खारा समुद्र है, जिसके उत्तरी भाग—अर्थात् सुमेरु से भी उत्तर— उत्तर कुरु द्वीप है, दक्खिन में जम्बू द्वीप, पूर्व में पूर्व विदेह और और पश्चिम में अवर गोदानीय चार द्वीप हैं। हमारे ज्योतिषियों ने ही पुराने भुवनकोष को गलत समझ लिया था और चतुर्द्वीपा की जगह पृथ्वी को सप्तद्वीपा कहना शुरू किया।

महाराज ने पुराने भूगोल के अनुसार मानस स्थान का निश्चय किया है? या, आजकल के मानसरोवर को जानकर? मानसरोवर भारत में नहीं, चीन के तिब्बत में है। अफसोस, मानसी सृष्टि होने का सौभाग्य हमारे देश को नहीं मिला और इस बारे में मार्क्सवादी चीन बाजी मार ले गया। लेकिन तब तो "भारत में ही मनुष्य की सृष्टि सिद्ध होती है," यह बात गलत साबित होगी!

५. भोजन आदि से रंगभेद

भोजन पर ब्राह्मणों का आज भी बहुत विश्वास है। आखिर करपात्री महाराज भी भोजनभट्टों के कुल में ही पैदा हुए। योरप में सभी लोग गोरे होते हैं। वहां काला देखने को नहीं मिलता। जापान में सभी लोग पीले से रंग के होते हैं, काला या सांवला वहां देखने को भी नहीं मिलता; वहां यह कहना प्रलाप माना जायगा कि गर्भवती माता के साग खाने से बच्चा काला पैदा होगा। पर, हमारे यहां ऋषियों की यही

६. ऋषियों की दिव्य शक्ति

ऋषियों की दिव्य शक्ति पर महाराज का सब से बड़ा जोर है। कलियुग के कारण यदि उसमें बाधा पड़ती है, तो यह भी शास्त्र के अनुसार ही है। आखिर बाधा पड़ी न, जब विश्वनाथ मन्दिर में शूद्र घुस गये और गंगाजल चढ़ाते समय अपने हाथ से पिण्डी छूकर सिर पर लगाने लगे! धरती फट नहीं गयी यही आश्चर्य है! करपात्री महाराज ने घोषित कर दिया कि शूद्रों के स्पर्श से विश्वनाथ में अब दैवशक्ति नहीं रही; वह केवल पाषाण मात्र रह गये। इसीलिए उसी मुहल्ले में करपात्री जी ने दूसरे विश्वनाथ की स्थापना करवायी। सोने की छतवाला चमचमाता विश्वनाथ का शिवालय अभी नहीं बन पाया है; अभी तो करपात्री जी के विश्वनाथ एक छोटे से आंगन की राममड़ैया में विराजमान हैं। सेठों की कृपा से मड़ैया का सुनहले मन्दिर में परिणत हो जाना मुश्किल नहीं है। लेकिन सवाल होता है कि ऋषियों के वचन का अनुसरण जब प्रकृति करती है, तो सेठों की क्या आवश्यकता? यदि करपात्री महाराज में वह शक्ति नहीं है, तो शक्तिधारी ऋषियों का अस्तित्व विश्व से लुप्त तो नहीं हो गया?

करपात्री जी "इतिहास-पुराण" की सभी बातों की सत्यता की घोषणा करते हैं। भूत-प्रेत का अस्तित्व न रहे तो मंत्र-तंत्र जाननेवाले ब्राह्मणों का रोजगार कैसे चलेगा? इसीलिए वह कहते हैं:

"प्रेतात्मा की कल्पना न केवल शास्त्रीय ही है, अपितु उसके प्रत्यक्ष चमत्कार आज भी उपलब्ध होते हैं। प्रेत-विद्या के आधार पर ही अन्य लोगों को अविज्ञात गुप्त से गुप्त रहस्यों का ज्ञान भी परलोक विद्यावाले बतलाते हैं। अनेक स्थानों में सबके सामने किसी गृह-प्रांगण में ईंट, पत्थर एवं अपवित्र वस्तुओं की वर्षा होना, घर की वस्तुओं, वस्त्रों आदि का देखते-देखते लुप्त होना आदि घटनाएं ऐसी हैं कि पुलिस की छान-बीन भी वहां व्यर्थ होती है।... आगम प्रमाण (है)... तदनुसार पूजा-पाठ, मंत्र-तंत्र—सभी का अस्तित्व है। ईश्वर न माननेवाले

मीमांसकों एवं सांख्यों ने भी मंत्रों का महत्व माना है। निरीश्वरवादी बौद्धों एवं जैनियों में भी मंत्रों का अस्तित्व मान्य है।" (पृ. ६७९)

आधुनिक शिक्षा और विज्ञान ने जिन सैकड़ों बातों को मिथ्या विश्वास बतलाकर लोगों की आस्था में परिवर्तन किया था, उन्हें जिस महापुरुष के प्रताप से फिर स्थापित होने का अवसर मिल रहा है, उसे ऋषि छोड़ और क्या कहा जा सकता है ? बुद्धिवाद भ्रान्त धारणा है; उसके कारण लोग पथभ्रष्ट हो गये हैं। जब तक वे अपौरुषेय वेद के सामने आंख मूंदकर सिर नवाने के लिए तैयार नहीं होते, तब तक कल्याण का रास्ता नहीं है। "कल्याण" के मालिकों ने इस पुस्तक को प्रकाशित कर बड़ा "पुनीत" कार्य किया है। वेद की दुहाई देनेवालों में बहुत कम ही ऐसे हैं जिन्होंने चारों वेदों और उनके लभ्य ब्राह्मणों का दर्शन किया है। उनके पढ़नेवालों की संख्या तो और भी कम है। सभी शास्त्रों और पुराणों का आदि-स्रोत वेद को बतलाया गया है। यदि उस वेद के भीतर आयी बातों का उल्लेख किया जाय तो करपात्री महाराज के श्रद्धालुओं की भी श्रद्धा टूट जायगी। आर्य अर्वतो मांस भक्षा (घोड़े के मांस का भोजन) करते थे, बैल का मांस उनका और उनके इन्द्र का प्रिय भोजन था।

फिर यह कितनी विडम्बना है कि जिस वेद को इतना मान दिया जाता है, उसके प्रबल समर्थक जैमिनि की मीमांसा, करपात्री जी के कथनानुसार भी अनीश्वरवादी है। कपिल का सांख्य भी अनीश्वरवादी है और कणाद के वैशेषिक में भी ईश्वर का कहीं पता नहीं। छः शास्त्रों में तीन अनीश्वरवादी हैं, तब भी करपात्री महाराज के कथनानुसार प्राचीन इतिहास-ग्रन्थ ईश्वर को सिद्ध करते हैं। आज दुनिया में जिस धर्म के अनुयायी सबसे अधिक हैं, वह बौद्ध धर्म भी अनीश्वरवादी है। एशिया और योरप की जनता की सबसे अधिक संख्या अनीश्वरवादी कम्युनिस्टों के मार्क्सवाद को स्वीकार करती है। कलियुग के ४ लाख ३२ हजार में अभी मुश्किल से पांच हजार साल बीते हैं। इतने ही में घोर अंधकार छा गया है ! करपात्री जी का अवतार इस परिस्थिति में कितना परिवर्तन ला सकता है, यह देखना है। मार्क्सवाद को भारत के

"सच्चे इतिहास" के अनुसार कलियुग का बल प्राप्त है, यही समझ कर यदि करपात्री जी चुप रहते तो अच्छा होता। पत्थर से सर टकराने से क्या फायदा ? "होईहै सोई जो राम रचि राखा !" और कलियुग को राम ने ही रच रखा है।

भला हो कलियुग का जो कि "शूद्रों" और दासों के उद्धार के लिए कटिबद्ध हुआ है !

: २ :

सेठों का समर्थन

पुस्तक का मुख्य उद्देश्य सेठों का समर्थन है, पर साथ ही काल पाकर जिन दूषित प्रथाओं का ध्वंस हो गया, उनका समर्थन करने या उनके निधन पर दो आंसू बहाने से करपात्री जी बाज नहीं आये।

१. सामन्तों-जमींदारों का समर्थन

राजा हमेशा के लिए गये और जमींदार-ताल्लुकेदार भी। पर इससे क्या? अटल सनातन धर्म जिनके पक्ष का समर्थन करता है, वे मिटकर भी फिर उगेंगे, ऐसी इस महात्मा की धारणा है। तभी तो वह कहते हैं:

"जमींदारी, जागीरदारी के सम्बंध में कम्युनिस्ट आदि की धारणाएं सर्वथा मिथ्या हैं। राजतंत्र के अनुसार राजा का ज्येष्ठ पुत्र राजा होता था, शेष पुत्रों को गुजारे के रूप में जागीरें मिलती थीं। इस क्रम में बहुत सी जमींदारियां बनीं, संग्राम जीतने से पुरस्कार के रूप में कुछ मंदिरों, आचार्यों, विद्वानों को दान के रूप में जागीरें मिलीं। बहुतों ने गाढ़े पसीने की कमाई से खरीदकर जमींदारियां बनायी हैं। यह सब भूमि भारतीय शास्त्रों के अनुसार वैध है।...शुक्र नीति का मत है कि 'वैध' स्वामित्व, दातृत्व और धनिकत्व तपस्या का ही फल है।... अर्थिता, दासता, दरिद्रता आदि पाप का फल है।...

"**स्वामित्वं चैव दातृत्वं धनिकत्वं तपःफलम्।**

"**एनसः फलमर्थित्वं दास्यत्वं च दरिद्रता॥...**

"शुक्र ने लिखा है कि प्रति वर्ष जिसे एक लक्ष मुद्रा से लेकर तीन लक्ष तक बिना प्रजापीड़न के वैध ढंग से आमदनी होती है, वह सामन्त कहलाता है।" (पृ. ३६६)

करुणामय महाराज की दृष्टि में जाड़े-गर्मी में शरीर सुखाकर, मर-खपकर, अनाज पैदा करनेवाले किसान और खेतिहर मजदूर पुराने जन्म के पाप भोग रहे हैं और उनकी कमाई पर जो गुलछर्रे उड़ायें, वे पुराने पुण्यात्मा हैं।

फिर श्रीमुख वचन है :

"जमींदारों, किसानों की भूमि का अपहरण भी व्यक्तिगत वैध स्वत्व के विपरीत ही है। व्यक्तिगत उत्पादन में भी प्रतियोगिता आदि द्वारा विकास में सुविधा होती है।... खेती का विकेन्द्रीकरण उद्योग स्वावलम्बन का प्रतीक है।" (पृ. ३७८)

शायद करपात्री जी खंगहीन अकलंकी अवतार हैं। तभी तो धर्म पर जहां प्रहार होता है, वह तिलमिला उठते हैं :

"दूसरों के साधन एवं धन-वैभव को छीनकर सुखी बन जाना बड़ा सरल है। पर यह शास्त्र के विरुद्ध है, क्योंकि वहां श्रीमानों के घर में पैदा होना पहले किये गये योग और तपस्या का फल माना जाता है।

"शुचीनां श्रीमतां गेहे योगभ्रष्टोऽभिजायते।" (पृ. ३६७)

"भूमि पर सामूहिक स्वामित्व ऐतिहासिक नहीं है। ईश्वर-निर्मित भूमि ईश्वर की थी। बलि की पत्नी विंध्यावलि ने भगवान वामन से कहा था कि आपने क्रीड़ा के लिए ही जगत की रचना की है, परन्तु दुर्बुद्धि लोग उसे अपना समझने लगते हैं।... ईश्वर के उत्तराधिकारी ब्रह्मा, इन्द्र, मनु आदि हुए। धर्म-नियंत्रण की स्थिति कमजोर पड़ने पर मत्स्यन्याय निराकरण के लिए जनता ने मनु को शासक बनाया। तदनन्तर विभिन्न व्यक्ति भी व्यष्टि भूमि (वैयक्तिक भूमि) के ही स्वामी हुए।... कोई वस्तु ईश्वर या प्रकृति द्वारा निर्मित है, एतावता वह सब की है—ऐसा नहीं कहा जा सकता। एक स्त्री भी प्रकृति द्वारा निर्मित

होती है, तो भी उस पर माता-पिता का ही स्वत्व होता है।... भूमि पर सभी प्राणियों को जीवित रहने, चलने-बैठने, श्वास लेने, अवकाश ग्रहण करने का अधिकार सदा मिला, आज भी है। परन्तु विशिष्ट रूप से भूमि का स्वामित्व भूमिपति का है। भूमिपति द्वारा दिया हुआ सीमित भूमि-पतित्व अन्य लोगों को भी प्राप्त हुआ। इसीलिए भूमि-कर देने की प्रथा है। यह कोई भी व्यवस्था सर्वथा आगन्तुक एवं नवीन नहीं है। व्यक्तिगत सम्पत्ति से ही कृषि का जैसे ऊंचे स्तर पर विकास हुआ, इसी प्रकार आगे भी व्यक्तिगत भूमि का अपहरण किये बिना उसका उच्चतम विकास हो सकता है।" (पृ. ४९२–९३)

करपात्री जी महाराज ने देरी कर दी। अपनी ऋतंभरा प्रज्ञा का परिचय यदि उन्होंने पहले दिया होता तो शायद देशी राजाओं का विलयन और जमींदारी का उच्छेद न होता!

२. वैयक्तिक सम्पत्ति ईश्वरीय विधान है

करपात्री जी व्यक्तिगत सम्पत्ति और ईश्वर-विश्वास को एक दूसरे का महान अवलम्ब समझते हैं, इसीलिए उन्होंने वैयक्तिक सम्पत्ति के समर्थन पर अपनी सारी शक्ति लगा दी। शारीरिक और मानसिक श्रम से अर्जित वैयक्तिक सम्पत्ति का विरोधी कोई कम्युनिस्ट नहीं है। पर सम्पत्ति से सम्पत्ति पैदा करना या उत्पादन के साधनों को वैयक्तिक सम्पत्ति बनाना जरूर कम्युनिस्टों को मान्य नहीं है। यदि करपात्री जी व्यक्तिगत सम्पत्ति को ईश्वरीय विधान कहकर उसे जनता पर थोपना चाहेंगे, तब भी मजदूर और किसान उसे उखाड़ फेंकने में ही अपना कल्याण समझेंगे। धर्म में झूठ को पचाने की शक्ति अधिक है, यह बात किसी से छिपी नहीं है। इसीलिए यदि सेठों की इस बाइबल में उससे काम लिया जाय तो कोई आश्चर्य नहीं। उदाहरण के लिए :

"मार्क्स के मत में परकीय वस्तु का अपहरण न्याय ही है, अन्याय नहीं।" (पृ. ११९)

मार्क्स ईश्वर के नाम पर परकीय बनायी हुई वस्तु को शोषकों की नहीं मानते। वस्तु उनकी है जो उसका उत्पादन करते हैं। चोर से छीनकर असली स्वामी को वस्तु दिलाना बिल्कुल उचित है।

पर करपात्री जी बांह उठाकर घोषित करते हैं :

"व्यक्तिगत सम्पत्ति के सिद्धान्त को शोषण का सिद्धान्त नहीं कहा जा सकता। ... 'बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय' बहुमत का सिद्धान्त ...असम्भव है।" (पृ. २४५)

"...विस्तृत मन्वन्तरों, युगों, कल्पों आदि महाकाल को देखते हुए हजार-पांच सौ वर्षों का कोई महत्व नहीं रहता।... अतः कुछ व्यक्तियों या कुछ सभाओं के प्रस्तावों के आधार पर शाश्वतिक सिद्धान्तों में रद्दोबदल नहीं हो सकता। इतिहास के आधार पर सिद्धान्त का निर्णय नहीं हो सकता।... जब पूर्वोक्त युक्ति से दाय, जय, क्रयादि द्वारा प्राप्त भूमि, सम्पत्ति आदि पर व्यक्तिगत अधिकार मान्य है, तब कुछ लोगों के प्रस्तावों या व्यवहारों से उनका रद्दोबदल कैसे हो सकता है?" (पृ. २५३–५४)

करपात्री जी का तर्क कितना दृढ़ है! उसका समर्थन करोड़ों वर्ष पहले लुप्त हुए ऋषि-महर्षि चाहे भले ही कर लें, पर आज का बहुजन-समाज तो इसे पागल की बलबलाहट ही कहेगा।

शोषकों और उनकी वैयक्तिक सम्पत्ति के बारे में वह कहते हैं :

"अमीरों के पास वस्तुओं की कमी न होने से उन्हें डाका-चोरी आदि की आवश्यकता बहुत कम पड़ती है। बहुत-से गरीब भी सदाचारी सन्त होते हैं। वैसे ही धनवान भी सदाचारी होते हैं।... इसलिए 'धनवान्, बलवान्, शक्तिमान सब शोषक होते हैं' यह सिद्धान्त ही गलत है।... कोटिपति की अपेक्षा अर्बुदपति प्रबल है, तब अर्बुदपति को शोषक और कोटिपति को शोषित कहना पड़ेगा। इसी तरह कोटिपति को शोषक एवं लक्षपति को शोषित कहना पड़ेगा। लक्षपति की अपेक्षा सहस्रपति, उसकी अपेक्षा शतपति आदि को शोषित कहा जायगा। फिर तो रूप्यकपति और वराटिका (कौड़ी) पति में भी शोषक-शोषित की कल्पना करनी पड़ेगी।" (पृ. २५५–५६)

और बातों में परम प्रतिक्रियावादी मीमांसाकार जैमिनि ने बुद्धि की एक बात कही थी — यह कि भूमि सब की होने से उसका दान नहीं हो सकता। पर करपात्री जी इसकी लीपा-पोती करने पर आमादा हैं :

"न भूमिर्देया स्यात् सर्वान् प्रत्याविशिष्टत्वात्।"

"अर्थात् राजमार्ग, चत्वर, देवादि स्थान-सहित अखण्ड भूमि का दान नहीं हो सकता क्योंकि वह सब की है। यद्यपि यहां कुछ (विद्वानों) लोगों ने इसी आधार पर यह भी सिद्ध किया है कि भूमि किसी व्यक्ति की नहीं होती, वह समाज की होती है, इसी से उसका दान नहीं हो सकता। किन्तु पूर्वापर देखने से यह गलत सिद्ध होता है।" (पृ. २५८)

सन्त विनोबा पद-यात्रा करते गांव-गांव यही सन्देश पहुंचा रहे हैं कि भूमि सबकी है, अपने झूठे स्वत्व को त्याग कर लोग भूमि दान करके उसे सामूहिक बनायें। भला करपात्री जी महाराज विनोबा जी को सन्त मानने के लिए कब तैयार हैं जब कि वह जैमिनि पर भी हाथ फेरने से बाज नहीं आते ?

करोड़पति-अरबपति बनना पूर्व जन्म का फल है ! और पूर्व कर्म के कारण ही उनको ऐसी बुद्धि आती है कि मुंदड़ा-काण्ड या दूसरे ढंग से अपने प्रयत्न में सफल हों ! महाराज फरमाते हैं :

"वैध मार्ग से... कोटिपति, अर्बुदपति, सर्वभूमिपति बनने की आकांक्षा और तदनुकूल प्रयत्न करने तथा सफलता पाने आदि में किसी को आपत्ति नहीं है।" (पृ. ३००)

महाराज वैध-मार्ग कानूनी मार्ग को नहीं मानते। उनके लिए वही मार्ग वैध है जो श्रुतियों और स्मृतियों में बतलाया गया है।

सेठ लोग मजूरों की कमाई में से काटकर जो अतिरिक्त लाभ लेते हैं, उसके बारे में श्रीमुख वचन है :

"अतिरिक्त आय को अवैध या अनुचित नहीं कहा जा सकता।... उद्योगपति अतिरिक्त आय का भागी होता है, तभी उस पर मशीनों को खरीदने, अन्वेषकों को सहायता देने आदि का उत्तरदायित्व होता है।" (पृ. ३१०–११)

अतः स्वामी जी के अनुसार व्यक्तिगत सम्पत्ति उठा देने से महान् अनर्थ होगा :

"व्यक्तिगत भूमि-सम्पत्ति आदि का राष्ट्रीकरण हो जाने से सभी को सदा के लिए परतन्त्रता के बन्धन में जकड़ जाना पड़ेगा। अपनी संस्कृति, सभ्यता एवं धर्म के विकास तथा रक्षण के लिए कोई कुछ भी न कर सकेगा। मुट्ठीभर तानाशाह कम्युनिस्टों का निर्णय ही उनकी धर्म, सभ्यता का निर्णय समझा जायगा। मध्यम श्रेणी को यह समझाने की आवश्यकता नहीं है कि मजदूर लोग गरीब नहीं रहेंगे।... जिसका शासन रहता है, वह गरीब नहीं रहता।" (पृ. ३६०–६१)

महाराज यहां बिल्कुल नग्न हो गये हैं। उनके सम्प्रदाय में नागा भी होते हैं इसलिए यह कोई अचरज की बात नहीं है! मजदूरों का गरीब नहीं रहना उन्हें बहुत अखरता है। अतः वह फरमाते हैं :

"ईश्वर की सृष्टि उसकी व्यक्तिगत सम्पत्ति ही थी। उसी से उत्तराधिकार रूप में वह उसकी सन्तानभूत विभिन्न प्राणियों को मिली।... किन्तु मुख्य रूप से दाय से और फिर जय, क्रय, दान, पुरस्कारादि रूप में ही भूमि-सम्पत्ति आदि पर व्यक्तिगत अधिकार हुए हैं। अपने-अपने कर्मों से सुख-दुःख एवं तत्तत्साधनों का व्यक्तिगत सम्बंध हुआ है।" (पृ. ५७२)

"भारतीय धार्मिक राजनीतिक शास्त्रों ने व्यक्तिगत सम्पत्तियों को वैध माना है। मन्वादि धर्मशास्त्र, मिताक्षरा आदि निबन्ध-ग्रन्थों में कहा गया है कि पितृ-पितामहादि की सम्पत्तियों में पुत्र-पौत्रादि का जन्मना स्वत्व है।... दाय के रूप में प्राप्त चल, अचल धन पुत्रादि का वैध धन है। इसी प्रकार निधि लाभ, मित्रों से मिली, विजय से प्राप्त, गाढ़े पसीने की कमाई से खरीदी हुई सम्पत्ति, पुरस्कार तथा दान में प्राप्त एवं उद्योग कृषि, व्यापारादि तथा उचित सूद आदि द्वारा प्राप्त सम्पत्ति वैध सम्पत्ति समझी जाती है।

"सप्त वित्तागमा धर्म्या दायो लाभः क्रयो जयः।
प्रयोगः कर्मयोगश्च सत्प्रतिग्रह एव च॥..." (पृ. २४८-४९)

"यदि कोई ... अपनी झोपड़ी और पत्नी का पति हो सकता है, तो भूस्वामी होना भी कोई अनहोनी घटना नहीं।" (पृ. २४६)

"वराटिकापति, रूप्यकपति, शतपति, सहस्रपति, लक्षपति आदि में आपस में शोषक-शोषित भाव की कल्पना हो सकती है। अन्तिम शोषित को ही रखकर सभी शोषकों की समाप्ति भी सम्भव नहीं है, क्योंकि अन्तिम शोषित कौन? इसका निर्णय कठिन है। ... समाज में सब रहें, पर कोई किसी का शोषक न रहे, सब एक-दूसरे के पोषक रहें। बाघ, बकरे सब एक घाट पर पानी पीयें। बाघ, बकरे दोनों को ही जीवित रहने का अधिकार है; परन्तु दोनों पोषक होकर ही रहें, शोषक होकर नहीं।" (पृ. २७३)

पूंजीपति, करोड़पति, धन्नासेठों का समर्थन करने के लिए करपात्री महाराज कहां तक जाने के लिए तैयार हैं? फिर यदि वे उन्हें अपने सिर-माथे पर चढ़ाते हैं तो इसमें आश्चर्य की कौन सी बात है?

गरीबों की श्रद्धा-विश्वास का सेठ और उनके पिट्ठू महात्मा किस तरह लाभ उठाना चाहते हैं, इसका एक नमूना देखिए:

"प्राय: गरीब मजदूर ईश्वरवादी धार्मिक होते हैं। भारत के शत-प्रतिशत मजदूर आस्तिक और धार्मिक हैं। वे रामायण, भागवत, गीता का सम्मान करते हैं, सत्यनारायण की कथा सुनते, कीर्तन करते हैं। बोनस, वेतन, भत्ता का प्रलोभन देकर कम्युनिस्ट उन्हें अपने आन्दोलनों में शामिल करते हैं। यदि वे समझ जायें कि कम्युनिस्ट ईश्वर, धर्म एवं शास्त्र नहीं मानते, तो वे भूल कर भी उनके डांड़े न जायं।" (पृ. ३१५)

सम्पत्ति के सम्बंध में करपात्री जी के रामराज्य की घोषणा इस प्रकार है:

"पूंजी, भूमि, खान आदि सबका नहीं है। जिन्हें पितृ-पितामहादि परम्परा से प्राप्त है, अथवा जिन्होंने जय, क्रय, पुरस्कार आदि के रूप में पाया है, उनकी है।" (पृ. २५६)

"तथाकथित राष्ट्रीकरण से राष्ट्र की भूमि, सम्पत्ति, कल-कारखानों, उद्योग-धन्धों का सरकारीकरण हो जाता है। व्यक्ति शासन-यन्त्र के नगण्य कलपुर्जे बन जाते हैं।" (पृ. २६२)

"सब वस्तुओं का राष्ट्रीकरण शास्त्र और धर्म के विरुद्ध तो है ही, लौकिक दृष्टि से भी (इससे) व्यक्तिगत स्वतन्त्रता नष्ट हो जाने से व्यक्तिगत विकास रुक जाता है।... व्यक्तिगत सम्पत्ति-शक्ति के नष्ट हो जाने पर शासन निरंकुश हो जाता है।" (पृ. २६३)

ताता-बिड़ला जैसे थैलीशाहों के हाथ में रहकर बिना कान-पूंछ हिलाये मर-मरकर काम करने में करोड़ों मजदूरों की स्वतन्त्रता बची रहती है! और उनके हाथ में खेलनेवाली नौकरशाही का शासन निरंकुश है! क्या कहना है इस नीर-क्षीर न्याय के बारे में ?

थैलीशाहों की तानाशाही का समर्थन करते हुए करपात्री जी महाराज फरमाते हैं :

"वस्तुतः अतिसमता और अतिविषमता दोनों ही दोष प्रतीत होते हैं। हाथ की अंगुलियां भी यदि अतिविषम हों तो भी, अतिसम हों तो भी, बेढंगी लगेंगी। पेट, पैर, हाथ सम हों तो भी ठीक नहीं और यदि पेट बहुत मोटा, पैर, हाथ बहुत पतले हों तो भी रोग ही समझा जायेगा। इस तरह आवश्यक है कि योग्यता-आवश्यकता के अनुसार सभी के काम, दाम, आराम की व्यवस्था हो। भले ही चींटी को कनभर, हाथी को मनभर के अनुसार योग्यता और आवश्यकता का ध्यान रखा जाय, परन्तु आराम की कमी नहीं होनी चाहिए। केन्द्रीकरण और राष्ट्रीकरण की अपेक्षा विकेन्द्रीकरण सदा ही सर्वश्रेष्ठ है। इसमें एक तो सम्पत्ति-सम्बंधी परम्परागत ईश्वरीय नियम का रक्षण होता है; 'सप्तवित्तागमा धर्म्या' के अनुसार दाय, जय, क्रय, पुरस्कारादि में प्राप्त सम्पत्ति वैध मानी जायगी।... सब वस्तुओं के राष्ट्रीकरण से मनुष्य भी यंत्रवत् काम करता है, ममत्व न होने से तत्परता और सावधानी से काम नहीं होता।" (पृ. २६३–६४)

मजदूर को कण-भर और सेठ करोड़ीमल को मन-भर देने पर करपात्री महाराज का बहुत जोर है। उन्होंने 'चींटी को कण-भर और हाथी को मन-भर' के महावाक्य को बहुत दोहराया है।

एक जगह न जाने कैसे गलती से महाराज ने खेती में केन्द्रीकरण की संभावना को भी स्वीकार कर लिया है :

"संयुक्त रूप से कृषि कर्म करनेवालों में भी हल-बैल, मजदूर, बीज, खाद आदि का सामान कम या अधिक जिनके जैसे हैं, तदनुसार ही उनको लाभ में हिस्सा मिलना चाहिए।" (पृ. ३५६)

वैयक्तिक सम्पत्ति की पवित्रता और औचित्य को सिद्ध किये बिना सेठों के स्वार्थ की रक्षा नहीं हो सकती, इसीलिए महाराज ने उस पर बहुत जोर दिया है। वह कहते हैं कि वैयक्तिक सम्पत्ति ईश्वरीय विधान है; यही नहीं, यह पूर्व जन्म के कर्म का फल भी है!

३. कर्मानुसार धनी-गरीब

किसी परम निपुण व्यक्ति ने कर्म और पुनर्जन्म के सिद्धान्त को आविष्कृत किया है। यह सिद्धान्त आर्थिक विषमता के औचित्य को साबित करने के लिए हर वक्त तयार रहता है। इन दिनों करपात्री जी इसके समर्थन में जी-जान से जुटे हुए हैं :

"धर्म-अधर्म के वैचित्र्य से ही जन्मों में वैचित्र्य होता है।"

"सुख-दुःख धर्माधर्ममूलक हैं।" (पृ. २१८)

"अपने-अपने कर्मों के अनुसार प्रबल, निर्बल, बुद्धिमान, निर्बुद्धि सभी रहें।... रामराज्य में बाघ-बकरे एक घाट पर पानी पीते थे।..."

"सब नर करहिं परस्पर प्रीती। चलहिं स्वधर्म निरत श्रुतिनीती।
"बयरु न कर काहू सन कोई। राम प्रताप विषमता खोई।
"फूलहिं फलहिं सदा तरु कानन। रहहिं एक संग गज पंचानन।

"चूहे-बिल्ली भी एक-दूसरे के हितचिंतक, उपकारक तथा पोषक बने हुए थे।" (पृ. २५६)

दुनिया में और खास करके भारत में ७० प्रतिशत से भी अधिक लोग जो असह्य दरिद्रता में पिसे जा रहे हैं, करपात्री जी की नजरों में उसका कारण यह नहीं है कि मुट्ठी भर धनी लोग गरीब श्रमजीवियों और किसानों की कमाई को खा जाते हैं। असली भक्षक की ओर से ध्यान बंटाने के लिए कर्म की दुहाई देते हुए वह कहते हैं :

"कालान्तर एवं जन्मान्तर के कर्मों एवं उनकी विचित्रता से ही फलों में भेद होता है।... जन्मान्तरीय सुकृत-दुष्कृत कर्मों के अनुसार ही प्राणियों को विविध प्रकार के वैध भूमिधन आदि ... प्राप्त होते हैं।" (पृ. ३२५)

"शास्त्रानुसार ... निकृष्ट कर्मों के कारण ही कुछ ऐसे मनुष्यों का भी जन्म होता है, जिनके पास पर्याप्त भूमि, सम्पत्ति आदि नहीं होती।"

(पृ. ३२८)

कांग्रेसी सरकार ने मुआवजा देकर जमींदारी को हटाया, पर धर्म-प्राण करपात्री जी इसे भी धर्म-विरुद्ध समझते हैं :

"जमींदारों, किसानों की भूमि का अपहरण भी व्यक्तिगत वैधस्व-त्व के विपरीत ही है। व्यक्तिगत उत्पादन में भी प्रतियोगिता आदि द्वारा विकास में सुविधा होती है। रामराज्यवादी तो बड़े-बड़े उद्योग-धंधों को भी विकेन्द्रित करने के ही पक्ष में हैं।" (पृ. ३७८)

यहां विकेन्द्रित करने का मतलब है उन्हें सेठों के ही हाथों में रहने देना, यानी उनका राष्ट्रीकरण न होने देना। इस तर्क के अनुसार जीसप कम्पनी को मूंदड़ा के हाथ से छीनकर सरकार का अपने हाथ में कर लेना धर्म-विरुद्ध होगा।

"स्वामित्वं चैव दातृत्वं धनिकत्वं तपः फलम्।
एनसः फलमर्थित्वं दास्यत्वं च दरिद्रता।"

(शुक्रनीतिसार १।१२१; पृ. ३६६)

करपात्री जी के कथनानुसार जब तपस्या का फल स्वामी, दाता, धनिक होना है, तथा पाप का फल भिक्षुक, दास और दरिद्र होना है, तो निश्चय ही इस सनातन विधान में रद्दोबदल करना भारी पाप होगा।

"दूसरों के साधन एवं धन-वैभव को छीनकर सुखी बन जाना बड़ा सरल है, पर यह हितकर नहीं है।" (पृ. ३६५)

पर शास्त्र तो कहता है : "**शुचीनां श्रीमतां गेहे योगभ्रष्टोऽभिजायते।**" (गीता ६।४१)

इसीलिए :

"जगत की विचित्रता (गरीबी-अमीरी) का आधार कर्म को मानना पड़ेगा। ... चींटी को कनभर और हाथी को मनभर।"

(पृ. ३६८, ४२०)

"रामराज्य की दृष्टि में तो कर्मानुसार फल के सिद्धांत में राजमार्ग निर्विवाद है।" (पृ. ३६२)

इसमें कोई शक नहीं कि कर्म और पुनर्जन्म का हथियार दुनिया को नरक बनाये रखने में रामबाण का काम देता है।

४. सेठ ही वास्तविक स्वामी

मार्क्सवादी लोग पूंजीपतियों के महत्व को हटाकर धन उत्पादन का श्रेय बुद्धि और शरीर के श्रमजीवियों को देते हैं। इस सिद्धांत को ऋतंभरा प्रज्ञा स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं है। वह कहती है:

"आधुनिक यंत्रीकरण युग में भी उत्पादन में पूंजी और श्रम दोनों कारण हैं। पूंजी बिना श्रमजीवी कुछ नहीं कर सकते। ... पूंजीपति को उत्पादन के लिए श्रम चाहिए, अतः पूंजीपति धन से श्रम खरीदता है। इसीलिए वह मजदूर को निश्चित मजदूरी देकर आय का भागी होता है।" (पृ. २५७)

"इस तरह 'सब में सब का अधिकार है', यह सिद्धांत गलत है। ...योग्यता एवं आवश्यकता के अनुसार चींटी को कणभर, हाथी को मनभर के अनुसार काम, दाम, आराम सबको ही मिलना चाहिए। इस रूप से विशिष्ट भूमि सम्पत्ति आदि के अधिकारी विशिष्ट लोगों को मान, आवास, स्थान एवं रोजी, रोजगार, उन्नति का खुला रास्ता सबको ही मिलना चाहिए।" (पृ. २५८)

"उत्पादन-साधन में रद्दोबदल का मुख्य श्रेय पूंजीपतियों को ही क्यों न दिया जाय?" (पृ. २६६)

करपात्री जी महाराज का श्री मुखवचन स्वयं भी वेद-शास्त्र से कम महत्व नहीं रखता, पर उनके मत के पोषक तो पौरुषेय-अपौरुषेय सभी शास्त्र हैं:

"बृहस्पति आदि ऋषियों ने ... लाभांश पूंजीपति का ही माना है। भूमि का लगान भी इन ऋषियों ने मान रखा है, परन्तु मार्क्सवादी इसे स्वीकार नहीं करते। वे आर्ष-इतिहास को प्रमाण नहीं मानते, भले ही आधुनिक मिथ्या मनगढ़न्त इतिहासों को ही सत्य मान लें।" (पृ. ३२५)

महाराज के हरेक वचन पर टिप्पणी करने की आवश्यकता नहीं। जहां एक ओर स्वार्थान्ध जोंकें और उनके अनुचर 'सत्य वचन' कहकर उनका स्वागत करेंगे, वहीं दूसरी ओर बुद्धिजीवी-श्रमजीवी शोषित उनके नग्न रूप को पहचानने में भूल नहीं करेंगे।

मार्क्स का कहना है कि कच्चे माल, यंत्र-साधन और श्रमजीवी को उत्पादन के मूल्य से कम अंश देकर बाकी को पूंजीपति मुफ्त में ही हड़प लेता है। इसका जवाब महाराज इस प्रकार देते हैं :

"लाभ या मुनाफा केवल मेहनत का फल नहीं हो सकता, किंतु वह कच्चे माल एवं मेहनत दोनों का ही फल है।... जैसे पूंजीपति ने दाम देकर कच्चा माल खरीदा, वैसे ही दाम देकर श्रम भी खरीदा। दोनों के खरीदने में खर्च हुए दाम से अधिक दाम जो मुनाफा के रुपये में मिला, वह पूंजीपति का ही होता है।... कच्चे माल के दाम निकालकर बचे हुए सौदे का दाम श्रम का ही फल है, यह कहना गलत है। ... शास्त्रों ने मजदूरी या वेतन के सम्बंध में मुख्य रूप से यही नियम माना है कि मालिक और नौकर का जो आपसी सम्मति से तै हुआ हो, वही उसकी मजदूरी है।...

"भृत्याय वेतनं दद्यात् कर्मस्वामी यथाकृतम्।
"आदौ मध्येऽवसाने वा कर्मणो यद्विनिश्चितम्॥"

नारद स्मृति, ६।२। (पृ. ३३२–३३)

"यदि लाभ सब मजदूर का ही है, पूंजीपति का कुछ नहीं, तब क्या पूंजीपति पागल है जो निरर्थक अपना रुपया खतरे में डालेगा? और झंझट मोल लेगा?... फिर तो अच्छा होता कि वह अपनी पूंजी बैठकर खाये और दूर से तमाशा देखे कि साधनों के बिना मजदूर श्रम मात्र से क्या कमाता है?" (पृ. ३५४)

"पूंजीपति जैसे दाम से मशीन खरीदता है, मकान बनाता है, दाम से कच्चा माल खरीदता है, वैसे ही दाम से श्रमिकों का श्रम भी खरीदता है।... न्यायतः आय का हिस्सेदार पूंजीपति ही है।" (पृ. ३५४–५५)

कलियुग में सनातन सिद्धान्त की अवहेलना होते देख वह फिर कह उठते हैं :

"मजदूरी ही नहीं, मजदूरी देनेवाले की सारी सम्पत्ति के ही हम मालिक बन जायें, यह भावना दगाबाज डाकू की दानवी मनोवृत्ति है, सद्विचार नहीं। एक खूंखार भेड़िया या कुत्ता भी यह नहीं सोचता कि मुझे टुकड़ा देनेवाला खतम हो जाय।" (पृ. ३६१)

"जिससे (पूंजीपति से) इतना बड़ा लाभ हुआ, इतनी बड़ी प्रगति हुई, उसे समाप्त कर देना क्या मानवता है ?...

"जेहिते नीच बड़ाई पावा। सो प्रथमहि हठि ताहि नसावा ॥"

(पृ. ३६५)

हड़ताल और दूसरी तरह से स्वामियों को हैरान करना सचमुच ही धर्म और ईश्वर की आज्ञा के बिल्कुल खिलाफ है! अतः मजदूरों को धमकी भरी सीख देते हुए वह कहते हैं :

"फड़वा चलाना ही काम नहीं है, महाव्यापार का संचालक भी काम करता है।" (पृ. ४१५)

मूंदड़ा और डालमिया के हाल के काम इसके गवाह हैं। दूसरे की अमानत में खयानत करना और सट्टेबाजी में करोड़ों का वारा-न्यारा करना क्या कोई मालूमी काम है ?

आगे वह फरमाते हैं :

"जो भी अपने कर्तव्य का पालन करते हैं, वे शोषक नहीं कहे जाते।... श्रमवालों को यदि लाभ का अंश मिलता है, तो साधनवालों का भी लाभ में हिस्सा होना अनिवार्य है।" (पृ. ५५७)

५. मजदूरों का दावा झूठा

जब लाभ में सेठों का अधिकार धर्म और ईश्वर द्वारा स्थापित है, ऐसी स्थिति में आज के मजदूर जब उसमें अपने अधिकार की मांग करते हैं, तब भला करपात्री जी जैसा धर्मप्राण व्यक्ति उसे कैसे मान सकता है ? वह कहते हैं :

"अनेकों उदाहरण पुराणों में मिलते हैं, जिनमें मालिकों के लिए सेवा-वृत्तिवाले नौकरों ने अपनी जान लड़ा दी थी, जिसका नमक खाते थे, उसके प्रति कृतज्ञ रहते थे; नमकहरामी को पाप समझते थे।"

(पृ. २८८)

पर आज ऐसे नमकहलाल नौकर दुर्लभ हो गये हैं ! करपात्री जी छाती पीट कर इसे कलियुग का प्रभाव मानते हैं।

"हड़तालों, जलूसों, सभाओं द्वारा उत्तेजना बढ़ाकर मजदूरों को तोड़-फोड़ के कामों में प्रोत्साहित किया जाता है।" (पृ. २८९)

"पैदावार के साधनों पर यदि लोगों के व्यक्तिगत अधिकार वैध हैं, तब उनका मिटाना या समाज या राष्ट्र के नाम पर कुछ तानाशाहों के हाथ में उत्पादन-साधनों का जाना कथमपि उचित नहीं कहा जा सकता।" (पृ. २९०)

भला "जिस मजदूर वर्ग ने वेतन लेकर अपना श्रम बेच डाला; फिर उसे क्या अधिकार है कि उत्पादन-साधनों या उत्पन्न हुई वस्तुओं पर अधिकार कर ले।... 'शास्त्रफलं प्रयोक्तरि तल्लक्षणत्वात'।"—मीमांसा ३।७।१८–३।८।५ (पृ. २९१)

करपात्री जी मीमांसा के सूत्र का हवाला देकर बतलाते हैं कि यज्ञ में यद्यपि कर्मकांड की सारी क्रिया ऋत्विज-पुरोहित करते हैं, पर उनको यज्ञ का फल नहीं मिलता, क्योंकि उन्होंने दक्षिणा रूप में यजमान से वेतन पा लिया है। उनके मतानुसार यही बात मजदूरों और पूंजीपतियों के सम्बंध पर भी घटती है।

"लाभ में साझेदारों का हिस्सा मान्य होता है, नौकरों का नहीं। क्योंकि उन्हें नौकरी मिलती ही है।" (पृ. ३२८)

"जो (पूंजीपति) पैदावार के साधनों की उन्नति कराता है, उसे उसका फल भी मिलना उचित ही है। फिर दूसरे की उन्नति से दूसरे के पेट में दर्द हो, इसे सिवा ईर्ष्या के और दूसरा क्या कहा जा सकता है ?" (पृ. ३३७)

भला मजदूरों की ढिठाई तो देखिए :

"जो पहले बेकारी के कारण परेशान होकर नौकरी ढूंढता था, उसे काम मिला। नौकरी मिलने से जब बैठने को जगह मिल गयी, तो अब वह मालिक को समाप्त करके स्वयं मालिक बनना चाहता है।" (पृ. ३५३)

"श्रमिकों को उनके श्रम का फल वेतन होता है।" (पृ. ३५७)

६. सेठों और मजूरों में समन्वय

करपात्री महाराज बाघ-बकरे को एक घाट पर पानी पिलाना चाहते हैं और चींटी जैसे मजदूरों को कणभर और हाथी जैसे सेठों को मनभर देना चाहते हैं। बल्कि, उनके विचार से, यदि लाखों मजदूर कण से भी वंचित हो भूखे मरें, तो इसे भी विधिका विधान ही समझना चाहिए, क्योंकि यह उनके पुराने कर्मों का फल है। बाघ-बकरे को एक घाट पर पानी पिलाने का ढंग बतलाते हुए वह कहते हैं :

"वर्ग-संघर्ष, वर्ग-विद्वेष फैलाकर वर्ग-विध्वंस का प्रयत्न कभी भी आदर्श वस्तु नहीं है।" (पृ. २५७)

न जाने मजदूरों या किसके लिए वह महाभारत के रंतिदेव का यह वचन उद्धृत करते हैं :

"न त्वहं कामये राज्यं न स्वर्गं ना पुनर्भवम्।

"कामये दुःखतप्तानां प्राणिनामार्तिनाशनम्॥" (पृ. २९२)

वर्ग-संघर्षवादी मार्क्स के अनुयायियों के प्रति उनका कहना है :

"अध्यात्मवादी ... रामराज्य ... का भौतिकवादी समाजवाद, साम्यवाद के साथ किसी तरह भी कोई समन्वय हो सकना असम्भव है।" (पृ. ३२६)

"मजदूर और मालिक का भी सह-अस्तित्व हो ही सकता है, फिर मार्क्सवादी चूहा, बिल्ली के तुल्य वर्गों का अमिट विरोध क्यों मानते हैं?" (पृ. ५३२–३३)

महाराज ने सेठों और पूंजीपतियों के समर्थन में जो उद्‌गार स्वतः, या ऋतंभरा प्रज्ञा अथवा शास्त्रवचन से इस पुस्तक में प्रकट किया है, उसका थोड़ा ही सा अंश यहां दिया गया है। वैसे तो उनकी सारी पुस्तक इसी उद्देश्य से लिखी गयी है।

: ३ :

रामराज्यवाद

गांधी जी ने राजनीतिक क्षेत्र में सबसे पहले रामराज्य की चर्चा की। गोस्वामी जी रामायण में रामराज्य की महिमा अनेक चौपाइयों में गा चुके हैं। सेठ-हितैषी शासन को रामराज्य का नाम देकर करपात्री महाराज ने उसका प्रचार किया और इसी नाम से अपनी पार्टी भी खड़ी की, जिसके उम्मीदवार प्रादेशिक या केन्द्रीय विधानसभाओं के चुनावों में जमानत जब्त कराने में सर्वप्रथम रहते हैं। दो ही तीन प्रान्त हैं जहां इस दल के कुछ सदस्य विधान सभा में पहुंच सके हैं। जो दल ८० फीसदी जनता को अपमानित, लांछित, पददलित रखना चाहता है, उसके प्रति जनता यदि ऐसा बर्ताव करे तो आश्चर्य क्या ? पर, करपात्री जी इससे निराश नहीं हैं। "कालो ह्ययं निरवधिविपुला च पृथ्वी।"

१. धर्म-नियंत्रित राज्य

करपात्री जी का रामराज्य धर्म-नियंत्रित रामराज्य है। उस धर्म के अनुसार वेद सुननेवाले शूद्र के कान में सीसा पिघलाकर डाल देना चाहिए और वेद उच्चारण करने पर उसकी जीभ काट लेनी चाहिए। जहां सबके समझने में ऐसी सुगम बातें आती हैं, वहां गम्भीर दर्शन भी उसका अपना क्षेत्र है। हर तरह से रामराज्यवाद को समझाया जा सकता है। वह फरमाते हैं :

"रामराज्यवादी जड़-चेतन दोनों को आध्यात्मिक सम्बंध से समन्वित करता है तथा राजतन्त्र-प्रजातन्त्र, व्यष्टि-समष्टि, वित्त-विभाग

एवं श्रम-विभाग को समन्वित करता है। इस तरह (वह) अध्यात्मवाद पर आधृत धर्म-नियंत्रित धर्म-सापेक्ष पक्षपात-विहीन शासनतन्त्र राज्य को ही अन्तिम संवाद एवं सामाजिक प्रगति की चरम सीमा मानता है।" (पृ. ३०)

पक्षपात-विहीन कहना गलत है, क्योंकि यह वाद १० प्रतिशत तथाकथित ऊंची जातिवालों के हित का समर्थक है।

"मनुष्य परिस्थितियों में परिवर्तन कर सकता है और करता है।" (पृ. ३३)

मार्क्स के इस वचन का समर्थन करने से महाराज को उजर नहीं हो सकता, क्योंकि जब वह स्वयं कलियुग की विकराल परिस्थिति में सतयुग का नारा ऊंचा कर रहे हैं, तब आखिर परिस्थिति में परिवर्तन के लिए ही तो।

"धर्म-नियंत्रित राजा या धर्म-नियंत्रित जन-प्रतिनिधियों का शासन अपेक्षित ही है।" (पृ. १२९)

लेकिन धर्म है क्या? इस बारे में उनका कहना है कि धर्म वही है जो कि अपौरुषेय वेद और निर्भ्रान्त ऋषि-प्रणीत शास्त्रों तथा उनकी ऋतंभरा प्रज्ञा से ज्ञात होता है। उसके अनुसार एक बार फिर शूद्रों और अतिशूद्रों को दास बना दिया जाय, दास-प्रथा का फिर से प्रचार किया जाय, लाखों की तादाद में विधवाएं हर साल आग में भूनी जायें, आदि।

"सिद्धान्ततः राज्यशक्ति को किसी भी धार्मिक, अध्यात्मिक नियंत्रण में ही रहना उचित है। अन्यथा उच्छृंखल राज्यशक्ति राष्ट्र के लिए भीषण सिद्ध हो सकती है।" (पृ. २५०)

अतः करपात्री जी भारत की राज्यशक्ति को अपने धर्म-नियंत्रण में लाना चाहते हैं।

"(महात्मा) लोग भी ऋतंभरा प्रज्ञा एवं अपौरुषेय शास्त्रों का आदर करते हैं।" (पृ. २५०)

लेकिन, कितने ही कांग्रेसी और कम्युनिस्ट ऐसी बातों को स्वार्थियों का जाल या झूठ की बकवास मानते हैं। पुराने भौतिकवादी भी यही कहते थे: "त्रयो वेदस्य कर्तारो भण्ड-धूर्त-निशाचराः।"

"अल्पज्ञ नेता या सरकार सर्व देश-काल-परिस्थितियों से अनभिज्ञ होते हैं। अतः वे यथाज्ञान नियम बनाते हैं।" (पृ. २५१)

जवाहरलाल, पन्त या सम्पूर्णानन्द सभी अल्पज्ञ हैं, कूपमहामंडूक हैं। सर्वज्ञ तो केवल श्री १००८ करपात्री जी महाराज हैं!

"धर्म-नियंत्रित पूंजीपति एवं समाज राष्ट्र के विकास एवं कल्याण के कारण हैं।... व्यक्तिगत भूमि, सम्पत्ति, पूंजी भी रहने में कोई अहित नहीं।" (पृ. २८०)

भला धर्म के ऐसे नियंत्रण को कौन अभागा पूंजीपति नहीं स्वीकार करेगा।

"पुराण, कुरान, वेद, बाइबिल, मन्दिर, मस्जिद, गिर्जा, गुरुद्वारा, सबका सम्मान रहेगा। सभी का अपनी बपौती — मिल्कियत पर अधिकार रहेगा।" (पृ. ४०४)

कलियुगी रामराज्यवाद सचमुच ही बहुत उदार है। सेठों का इसी में कल्याण भी है। वे पुराण-कुरान का झगड़ा लेकर ज्यादा दिनों तक पनप नहीं सकते।

"जिस दिन मनुष्य भगिनी-पुत्री से सन्तान उत्पन्न करने लगेगा, उस दिन मनुष्यता-पशुता में कोई भेद नहीं रहेगा। कम्युनिस्ट भी ऐसा करने का साहस नहीं कर सकता है।" (पृ. ४१७)

महाराज ने यहां बड़ी गलती की है। दक्षिण में पुराने रामराज्य के सबसे बड़े समर्थक हैं। छुआछूत में उत्तरवालों के कान काटनेवाले बड़े-बड़े वेदान्तियों, मीमांसकों, वैदिकों, कर्मकांडियों को पैदा करनेवाले वहां ब्राह्मण हैं, जो आज भी हर साल हजारों की संख्या में भगिनी-पुत्री (भांजी) से ब्याह करते हैं, उससे सन्तान उत्पन्न करते हैं, और धर्म तथा परम्परा उनका समर्थन करती है। न विश्वास हो तो द्रविड़ देश में जाकर इसे वह अपनी आंखों से देख लें।

"... धर्म-परम्परा भी अनादि है। तन्मूलक वर्णाश्रम धर्म, पातिव्रत्यादि धर्म भी अनादि ही हैं।... विवाह आदि सभी अनादि हैं। श्वेतकेतु आदि की कथाएं गुणवाद से लक्ष्यार्थ में पर्यवसित हैं, वाच्यार्थ में नहीं।" (पृ. ४९४)

हां, ये सब अनादि हैं। तभी तो द्रविड़ देश के वैदिक ब्राह्मण भगिनी-पुत्री से विवाह करते हैं। वर्णाश्रम धर्म अनादि है, इस पर भी कितने ही सनातनियों को आपत्ति हो सकती है, जबकि वह महाभारत में देखते हैं: "एकवर्णमिदमासीत विश्व .. युधिष्ठिर।" पातिव्रत्य से महाराज का अर्थ आग में सती होने से है। पर, यह सती-प्रथा वैदिक काल में नहीं थी, वेद-ब्राह्मण में इसका कोई प्रमाण नहीं मिलता। ईसा-पूर्व प्रथम शताब्दी में आनेवाले शकों में यह रीति अवश्य थी जिनके द्वारा वह भारत में चली। श्वेतकेतु ने विवाह-मर्यादा तब स्थापित की जब उसकी मां को कोई दूसरा ऋषि जबर्दस्ती ले जा रहा था और पुत्र के आपत्ति करने पर श्वेतकेतु के पिता ने कहा कि यह सनातन धर्म है। उसी समय श्वेतकेतु ने प्रतिज्ञा की कि मैं इस प्रथा को बन्द करूंगा। तभी से सबके लिए उन्मुक्त स्त्रियां एक-एक पुरुष के गले बांध दी गयीं, अर्थात् विवाह-प्रथा जारी हुई। करपात्री जी महाराज इसे गुणवाद बताकर इससे इनकार करते हैं। इसका अर्थ यह है कि आज की ऋतंभरा प्रज्ञा पहले की ऋतंभरा प्रज्ञा का प्रतिवाद भी कर सकती है।

"पाश्चात्य राजतन्त्र ने जड़वाद की धुन में ईश्वर एवं धर्म से नाता तोड़ लिया, फिर पूंजीपतियों ने राजतन्त्र को भी समाप्त कर दिया। .. जड़वाद से प्रभावित, समाजवाद का अन्धानुकरण करनेवाली भारत सरकार तलाक का नियम बनाकर स्त्रियों को स्वाधीन करने के नाम पर उनका सर्वनाश कर रही है।" (पृ. ५७६)

पाश्चात्य राजतन्त्र और पूंजीपतियों पर महाराज का यह दोष सही नहीं है। इसके लिए पाश्चात्य पूंजीपतियों के सर्वश्रेष्ठ नमूने अमरीका के आइजनहावर और डलेस के व्याख्यानों को देखें, जिनमें ईश्वर और धर्म के समर्थन में करपात्री महाराज से भी ज्यादा लगन तथा तेजी देखने में आती है। उन्हें अभी करपात्री महाराज के इस ग्रंथ-रत्न का पता नहीं लगा है, नहीं तो इसका तीन हजार का नहीं, बल्कि तीन लाख का संस्करण निकला होता। राजतन्त्र को वहां अवश्य अधिकांश स्थानों से हटा दिया गया है, लेकिन यह पूंजीपतियों का कसूर नहीं है, यह काम अंधी जनता का है। भारत सरकार भी तलाक और स्त्रियों की स्वाधीनता

स्वीकार करने को मजबूर हुई है, इसलिए कि महाराज के सभी काल के रामराज्य में ७० प्रतिशत जनता में तलाक का खुला रिवाज था।

करपात्री महाराज भारत के साधुओं से भी बहुत रुष्ट हैं, क्योंकि वह विश्वनाथ मन्दिर में 'शूद्रों के' प्रवेश करने के विरोधी नहीं थे, और न करपात्री महाराज जैसे संकीर्ण हृदयवाले पुरुष द्वारा परिचालित गोहत्या-विरोधी आंदोलन का समर्थन करने के लिए तैयार थे। इसीलिए करपात्री जी उन पर बरस पड़ते हैं :

"आज के सरकारी साधु-समाज का यह प्रस्ताव कि 'साधु-समाज गोहत्याबन्दी आन्दोलन का समर्थन नहीं कर सकता, क्योंकि वह ऐसे अपराधी साधुओं द्वारा चलाया गया है जिनसे साधु-समाज की सत्ता को बहुत ठेस पहुंची है,' आंख खोल देनेवाला है। विश्वनाथ-मन्दिर में हरिजन-प्रवेश, हिन्दू-विवाह, तलाक आदि प्रश्नों पर सरकारी साधुओं एवं सरकारी पंडितों का चुप रहना भी एक विचित्र बात है।" (पृ.८००)

सरकारी साधु-समाज से महाराज का मतलब उस संगठन से है जो कांग्रेसी नेताओं की प्रेरणा और संरक्षण में कायम किया गया है। पर, करपात्री जी के विचारों और कामों का केवल सरकारी साधु ही नहीं, बल्कि अधिकांश साधु विरोध करते हैं। ऐसा क्यों न हो जब कि मुट्ठी भर दंडी संन्यासियों को छोड़कर बाकी सभी साधु वर्णाश्रम-धर्म का ताक पर रखकर भिन्न-भिन्न जातियों के साथ आपस में क्षीर-नीर होकर रहते हैं। बहुतों के सम्प्रदाय संस्थापक भी ब्राह्मण नहीं, बल्कि शूद्र या अछूत हैं। उन्हें करपात्री जी की व्यवस्था से क्या लेना-देना है ? करपात्री जी के गोहत्या-विरोधी आंदोलन को भी वह धोखे की टट्टी समझते हैं, नहीं तो सरकारी हो या गैर-सरकारी, कोई भी साधु गोहत्याबन्दी का विरोधी नहीं है। मन्दिर-हरिजन-प्रवेश, हिन्दू-विवाह, तलाक आदि को वह सामाजिक प्रगति का अंग समझते हैं, इसीलिए उसके बारे में चुप नहीं रहते, बल्कि समर्थन भी करते हैं।

२. राजा देवता है

रामराज्य भला राम के बिना कैसे हो सकता है? इसीलिए करपात्री महाराज राजतंत्र को ही आदर्श राज मानते हैं। आज हजारों नहीं, लाखों 'शूद्र' तपस्या करके ब्राह्मणों के कान काटते हैं और कोई पूछनेवाला नहीं। एक शम्बूक शूद्र ने तपस्या शुरू की थी। उसके इस पाप से ब्राह्मण का पुत्र मर गया। वह राजा राम के पास गुहार लेकर गया। राम ने जाकर उसको तपस्या से विरत होने के लिए नहीं कहा, बल्कि उसके सिर से धड़ को अलग कर दिया। करपात्री जी के रामराज्य के लिए ऐसे ही राजा की आवश्यकता है:

"...भारतीय दृष्टि से मत्स्यन्याय के पहले सभी व्यक्तियों में सत्वगुण की प्रधानता थी। सभी धार्मिक एवं ईश्वरवादी थे। सभी प्राणिमात्र को ईश्वर का पुत्र समझते थे। सभी सबके साथ समानता, स्वतंत्रता, भ्रातृता का व्यवहार करते थे।... मत्स्यन्याय फैला, तब प्रजा ने पीड़ित होकर ईश्वर से प्रार्थना कर उसके अनुग्रह से चन्द्र, सूर्य, इन्द्र, वरुण, कुबेर, यम आदि लोकपालों के गुणों तथा अंशों से युक्त राजा को प्राप्त किया और उसे विविध प्रकार से सम्मानित किया।

"**महती देवता ह्येषा नररूपेण तिष्ठति।**" मनुस्मृति ७।८ (पृ. ४९)

राजा का न होना, यानी अराजकता, रामराज्य के अनुकूल नहीं हो सकती। राम तो आखिर राजा के ही प्रतिनिधि थे, इसीलिए करपात्री महाराज फरमाते हैं:

"अराजक राज्य निर्वीर्य होकर नष्ट हो जाते हैं। अराजकता से अधिक कोई पाप नहीं।...'**न हि पापात् परतरमस्ति किंचिदराजकात्**'।"—महाभारत, शांतिपर्व ६७।७ (पृ. ६५)

और सुनिए:

"**अराजकाः प्रजाः पर्वं विनेशुरिति नः श्रुतम्।**
"**परस्परं भक्षयंतो मत्स्या इव जले कृशान्॥**"—शांतिपर्व ६७।१७
(पृ. ६६)

वस्तुतः रामराज्य के समर्थक को पहले राजा की स्थापना से शुरू करना चाहिए था, तब रामराज्य स्वयं ही स्थापित हो जाता। लेकिन आज के हमारे गणराज्य के खिलाफ आवाज उठाने का नतीजा अच्छा नहीं होता, इसलिए महाराज चुप ही रहना चाहते हैं।

महाराज राजा की महिमा उपनिषद् के शब्दों में बतलाते हैं :

"न मे स्तेनो जनपदे न कदर्यो न मद्यपः।
"नानाहिताग्निर्नायज्वा न स्वैरी स्वैरिणी कुतः॥"

"...जो रामराज्य एवं कृतयुग की स्थिति थी, वह तो आज है ही नहीं।" (पृ. १०६)

पर, महाराज के मत में वर्णाश्रम धर्म अनादि है। किसी राजा के राज्य में यदि सभी आहिताग्नि और यज्वा —होमयज्ञ करनेवाले— हैं, तो उसका अर्थ हो जायगा कि शूद्रों को भी यज्ञ-हवन का अधिकार था। यह कैसा वर्णाश्रम धर्म रहा था ? क्या उस वर्णाश्रम धर्म की स्थापना तो महाराज के मन में नहीं है ? उनके श्रद्धालु सेठ नम्रता पूर्वक यह सवाल उनसे पूछ सकते हैं।

३. रामराज्यी समानता-स्वतंत्रता

"स्वभाव से सभी प्राणी, 'अमृतस्य पुत्राः' परमेश्वर के पुत्र हैं। अतः सब में समानता, स्वतन्त्रता, भ्रातृता ही स्वाभाविक है।" (पृ.१३२)

करपात्री महाराज के मत में शूद्रों, अतिशूद्रों और स्त्रियों के बारे में जो स्थान है, उसे देखते हुए यहां "समानता, स्वतंत्रता, भ्रातृता" का अर्थ गुणवाद ही से लेना चाहिए।

वर्णाश्रम धर्म द्वारा समाज में जो वैचित्र्य या विभिन्नता स्थापित की गयी है, वह उसकी ही परम समर्थक है :

"अध्यात्मवादियों के मतानुसार मूल कारण से विभिन्न विचित्र ढंग की सृष्टि शक्ति-वैचित्र्य, कर्म-वैचित्र्य से संगत होती है।" (पृ. १३३)

अद्वैत ब्रह्म मूल कारण है। करपात्री महाराज इस ग्रंथ में सत्कार्य-वाद के समर्थक मालूम होते हैं, अर्थात् कार्य कारण में पूर्णतः मौजूद रहता है। फिर यह शूद्र और ब्राह्मण का भेद कैसा ? इसका समर्थन वह ब्रह्म की अद्भुत शक्ति या पूर्व जन्म के कर्म से बतलाते हैं। खैर, यह संगति आगे देखी जायेगी, जब करपात्री जी के मायावादी दर्शन पर विचार किया जायेगा।

करपात्री जी स्वयं अपने विरोधियों के सत्य को उद्धृत करते हुए भी उसे समझने की कोशिश नहीं करते। यह सुनिए :

"शाश्वत नियमों का नारा पूंजीवादी दार्शनिकों द्वारा व्यक्तिगत सम्पत्ति की सुरक्षा तथा शोषण को प्रोत्साहित करने के लिए लगाया गया।" (पृ. २४८)

'हाथी के दांत खाने के और और दिखाने के और'—यह करपात्री महाराज के परम गुरु के दर्शन का एक मुख्य सिद्धान्त है। शायद उसी का पालन करते हुए चेला जी फ्रांसीसी क्रांति के "समानता स्वतंत्रता और भ्रातृता" के शब्दों का इस्तेमाल करते हुए कहते हैं :

"शास्त्रों के अनुसार ... अमुक-अमुक हेतुओं से मूर्ति से देवत्व नष्ट हो जाता है, और अमुक को मूर्ति पूजा से कुछ लाभ न होगा किन्तु उल्टा नुकसान होगा।" (पृ. ५६२)

यहां समानतावादी करपात्री महाराज का संकेत विश्वनाथ-मन्दिर से है। मन्दिर में जब अछूत चले गये, तो विश्वनाथ की मूर्ति से देवत्व नष्ट हो गया। उसकी पूजा से पुण्य नहीं, उल्टा पाप होगा। इसीलिए धर्मप्राण सेठों को चाहिए कि वे लाखों रुपया देकर करपात्री जी के नये विश्वनाथ के लिए सुनहला मन्दिर बनवा दें।

४. भूंठ भराना बेकार

जनतांत्रिक देशों में जनता सर्वोपरि है, उसी की राय परम मान्य समझी जाती है। हरेक बालिग स्त्री-पुरुष को वोट देने का अधिकार होता है। यदि बहुमत नहीं मिला तो सी० बी० गुप्ता जैसे परम शक्ति-

शाली कांग्रेसी नेता को भी हार खानी पड़ती है। सभी पूंजीपति मन से बालिग मताधिकार को स्वीकार नहीं करते। करपात्री महाराज भी उनकी इस राय से सहमत हैं और बालिग मताधिकार द्वारा निर्वाचन को मुंड गणना कहते हैं। वह फरमाते हैं :

"भारतीय राजनीति में सदा से ही समाज को सर्वश्रेष्ठ माना जाता है और उसमें वर्णाश्रम धर्म का समन्वय है। ... शासन बदलते रहते हैं, समाज और धर्म नहीं बदलते।" (पृ. ५६)

समाज से करपात्री जी महाराज का क्या अर्थ है, यह समझना बहुत मुश्किल है। जनगण से तो उनका अभिप्राय हो नहीं सकता, क्योंकि :

"जनवाद में भी विवेक का अभाव ही है। निष्पक्ष दूरदर्शी ऋषियों के राजनीतिक शास्त्रों एवं धार्मिक-आध्यात्मिक दर्शनों के बिना विवेक न तो भौतिक जनतंत्र में है न निरपेक्ष राजतंत्र में ही। ... विधान-निर्मात्री परिषद् न बनाकर विधान-निर्णेत्री परिषद् ही बनाना है।" (पृ. १०३)

विधान-निर्माण का काम तो अपौरुषेय वेद और निष्पक्ष ऋषियों ने अपने शास्त्रों में पहले ही सम्पन्न कर दिया है। भला अब उसे बनाने की क्या आवश्यकता है? हां, उन विधानों के अनुसार कार्य का निर्णय करने के लिए परिषद् बनाना जरूरी है। अतएव :

"बहुमत का भी कोई मूल्य नहीं। ... नेत्रविहीन कोटि-कोटि अन्धे भी रूप-ज्ञान में सफल नहीं हो सकते। ... उन्हीं का मत मान्य हो सकता है, जो उसके जानकार तथा अधिकारी हैं।" (पृ. २५२)

"रामराज्य में उद्योगों का विकेन्द्रीकरण अभीष्ट है।" (पृ. २६५)
अतः बहुमत उसी हद तक आदरणीय हो सकता है :

"जहां तक बहुमत विशेषज्ञों (ऋषियों) के मत से न टकराये।" (पृ. २६६)

"आज के लोकतन्त्र शासन का आधार मुंड-गणना है। इसके अनुसार योग्य शासकों का संग्रह कठिन ही नहीं, अपितु असम्भव भी हो जाता है। बहुमत जिसे प्राप्त हो, उसी के हाथ में शासन-सूत्र आ जाता है।" (पृ. ७९३)

महाराज कहते हैं कि मुंड-गणना छोड़ देना चाहिए और पुराने युग का अनुसरण करना चाहिए। उदाहरण के लिए :

"'इतिहास' बतलाता है कि संसार के प्रमुख राजनीतिज्ञ शासकों ने अपनी राजनीति की बागडोर तपःपूत, लोकहितैषी, राग-द्वेषविहीन ऋषियों के ही हाथ में दे रखा था।" (पृ. ८०३)

आजकल ऐसे तपःपूत ऋषि करपात्री जी हैं—इसे यदि हिन्दी के कुछ प्रभावशाली दैनिक पत्रों से पूछा जाय, तो वे शायद ही स्वीकार करने में आनाकानी करें।

कुछ लोग करपात्री जी महाराज को सलाह देते हैं कि जिस वैराग्य के वश में होकर उन्होंने एक बार सभी चीजों को त्याग कर खाने के लिए खप्पर भी नहीं रखा और कर को ही पात्र बनाया, उन्हें उसी मार्ग को फिर अपनाना चाहिए। इसका उत्तर महाराज देते हैं :

"... महात्मा या विद्वान् को इन टंटों से दूर रहकर भजन ही करना चाहिए। ठीक है, परन्तु शास्त्र एवं धर्मस्थान नष्ट हो जाने पर विद्वानों या महात्माओं का शंडामर्क के तुल्य सरकारीकरण हो जाने पर भजन करने का, धार्मिक होने का मन भी कैसे बन सकेगा?" (पृ. ८०३)

महाराज इसीलिए सच्चे ऋषियों का राज्य स्थापित करना चाहते हैं।

५. सच्चे ऋषियों का राज्य

"भारत के जितने भी विशिष्ट विद्याएं, ज्ञान, विज्ञान, दर्शन, शिल्प, साहित्य तथा नीति आदि सम्बंधी ग्रन्थ हैं, सबके रचयिता अरण्यवासी कन्द-मूल-फलाशी वल्कलवसनधारी निष्किंचन लोग ही हुए हैं। वेदान्त, सांख्य, न्याय, मीमांसा, वैशेषिक, योग, भारत, रामायण, योगवाशिष्ठ तथा शुक्र, बृहस्पति, कणिक, कौटिल्य, कामन्दक आदि जितने नीतिग्रन्थ हैं, सबके निर्माता अकिंचन लोग ही हैं, धनवान या पूंजीपति नहीं। शंकराचार्य, उदयनाचार्य, भट्टपाद, श्रीहर्ष, वाचस्पति मिश्र, रामानुजाचार्य, तुलसीदास, सूरदास आदि कोई भी धनवान आदमी नहीं थे।" (पृ. ३९७)

इसीलिए करपात्री जैसे अकिंचन महात्माओं के हाथ में शासन की अन्तिम बागडोर होनी चाहिए। महात्मा नरम दिल के होते हैं, उनसे राज्य का अनिष्ट होगा इसका खयाल हर्गिज नहीं आना चाहिए क्योंकि :

"रामराज्यवादी ऐसे अवसर के लिए अनिवार्य रूप से आनेवाले युद्ध का स्वागत करता है। मायावी के साथ निरी साधुता से काम नहीं चलता।" (पृ. ४०१)

आजकल के भौतिकवादी और भारत की ८० प्रतिशत जनता के नेता जरूर कहेंगे कि पुराने दासता-युग के ऋषि भी आज के ऋषियों से बेहतर नहीं थे। उनकी दूकानें भी इसी तरह झूठ और पाखंड के आधार पर चलती थीं, जैसे आज भी भारत के आधे दर्जन स्थानों में चल रही हैं। उनका मोटो है : **"रोटी खाइये घी-शक्कर से, दुनिया ठगिये मक्कर से।"**

६. पार्टियों में श्रेष्ठ रामराज्य परिषद्

भला जिस पार्टी के साथ राम का नाम जुड़ा हो, जो रामराज्य की स्थापना करना चाहती हो, उसका मुकाबला कौन दूसरी पार्टी कर सकती है ? महाराज 'सत्य वचन' कहते हैं :

"भारत में कांग्रेस, हिन्दूसभा, जनसंघ आदि सुधारवादी संस्थाएं हैं। ये एक तरफ भारतीयता, संस्कृति की बातें करतीं और सुधार भी चाहती हैं। उधर कम्युनिस्ट, सोशलिस्ट आदि अराजकतावादी पार्टियां सर्वथा परिवर्तन कर महाक्रान्ति चाहती हैं। (इनके विरुद्ध) रामराज्यादि पार्टियां शास्त्रों और परम्परा के अनुसार सनातन संस्कृति, धर्म एवं राजनीति में सिद्धान्ततः तिलभर परिवर्तन नहीं चाहतीं। ... रामराज्यवादी ईश्वर, धर्म, एवं आत्मा को ही आधारभित्ति मानकर चलते हैं। अपौरुषेय वेद एवं तन्मूलक आर्षशास्त्र तथा तदविरुद्ध तर्क के आधार पर तत्व का निर्णय करते हैं। ... मार्क्सवादी कहता कि 'जनता की जनतंत्रता से ही व्यक्ति को स्वतंत्रता मिलती है, अतः सब कुछ जनता के लिए ही होना चाहिए।' पर रामराज्यवादी की दृष्टि में व्यक्ति और समाज

दोनों का समन्वय ही ठीक है।...एक-एक सैनिक कट जाने से सेना कट जाती है, वैसे ही एक-एक व्यक्ति के धनवान-बलवान बन जाने से समष्टि बलवान-धनवान बन जाता है।... रामराज्यवादी सर्वत्र आनन्दित व्यक्ति या वर्गों में सामंजस्य के साथ अभ्युदयोन्मुखी प्रगति को श्रेयस्कर समझते हैं। वर्ग-संघर्ष दुष्प्रचारमूलक ही होता है।... अच्छे लोगों में वर्गवाद सफल नहीं होता।" (पृ. २४६–४७)

यहां महाराज ने दूसरे राजनीतिक दलों से अपने दल के भेद को स्पष्ट करके बतलाया है। वह कहते हैं :

"...निष्पक्ष रूप से सर्वहितकारी रामराज्य है।" (पृ. ३२२)

"रामराज्य में व्यक्तियों की बपौती सम्पत्ति सुरक्षित रहती है। ...मार्क्सवादी व्यवस्था में धर्म, धन एवं जान-माल का प्रत्यक्ष अपहरण होता है। वैध सम्पत्ति, बपौती आदि का कुछ भी महत्व मार्क्स के मत में नहीं है।" (पृ. ३३८)

यही नहीं, उनके मतानुसार रामराज्यवाद सभी आर्थिक बीमारियों की रामबाण औषधि भी है :

"रामराज्य-प्रणाली से बेकारी, भुखमरी नहीं व्यापेगी। आर्थिक संकट भी नहीं आयेगा। इसीलिए माल की खपत की भी कमी नहीं होगी।" (पृ. ३५८)

समाजवादी और उनके आचार्य मार्क्स कहते हैं कि बेकारी पूंजीवाद का एक अनिवार्य अंग है, जो समाजवाद में सम्भव नहीं है। अमरीका में आजकल २० लाख आदमी बेकार हैं। इंगलैण्ड में भी उनकी संख्या कई लाख है। जिस वक्त रोजगार चमकता है, उस वक्त भी बेकारी मजदूरों का पिंड नहीं छोड़ती। इसके विरुद्ध साम्यवादी रूस में बेकारी का कहीं पता नहीं। बल्कि, वहां मांग के अनुसार मजदूर नहीं मिलते। क्या रामराज्य में ऐसे ऋषि होंगे जिनके कहने का प्रकृति अनुसरण करेगी ? भरद्वाज ने प्रयाग में मुंह से कह दिया और भरत की सेना के एक-एक आदमी के लिए भोजन-छाजन ही नहीं, बल्कि दास-दासी तक उपस्थित हो गये। यहां शायद करपात्री महाराज का ऋषियों की इसी दिव्य शक्ति की ओर इशारा है।

यन्त्रों के कारण बेकारी बढ़ती है। यन्त्रों का बहिष्कार करने की बात करपात्री जी नहीं कर सकते, क्योंकि उन्होंने पैदल, बैलगाड़ी या घोड़ेगाड़ी की सवारी छोड़कर विमान-यात्रा को अधिक प्रश्रय दिया है। सेठ लोग भी अब बड़े-बड़े कारखानों के मालिक हैं, जहां मोटरें और इंजन तैयार होते हैं। भला उनके ऊपर प्रहार करने की इच्छा महाराज के मन में कैसे आ सकती है? हां, वह महायन्त्र पर प्रतिबन्ध लगाने के समर्थक अवश्य हैं:

"रामराज्यवादी ... महायंत्रों के निर्माण पर प्रतिबन्ध लगाना उचित समझता है। ... रामराज्य की दृष्टि में तो सदा ही काम, दाम, आराम का उचित वितरण आवश्यक है।" (पृ. ३४०)

महायन्त्र में हवाई-जहाज हैं कि नहीं जिन पर चढ़कर इन दिनों कभी-कभी करपात्री जी और उनके शिष्य सफर किया करते हैं? इसमें तो कोई सन्देह है ही नहीं कि काम-दाम-आराम का वितरण रामराज्य में 'चींटी को कणभर और हाथी को मनभर' के अनुसार ही होगा।

७. कम्युनिस्ट-पथ गलत

कम्युनिस्ट तो महाराज के मत से महापापी ही नहीं, अतातायी भी मालूम होते हैं, और उनके लिए तो कहना चाहिए: "आततायिनमायान्तं हन्यादेवाविचारयन्।" इस बारे में करपात्री जी और अमरीका के कर्णधार बिल्कुल एकमत हैं। भारत में जगह-जगह फैले अमरीकी चरों को यह मालूम होना चाहिए और करपात्री महाराज को भी विमान से अमरीका की सैर करनी चाहिए। शास्त्र में समुद्र-यात्रा निषिद्ध है, न कि आकाश-यात्रा। आकाश तो अखण्ड है, चाहे वह घटाकाश-मठाकाश अमरीका का हो या भारत का। महाराज कम्युनिस्टों की बात को झूठा बतलाते हुए आगे लिखते हैं:

"मार्क्स की भविष्यवाणी के अनुसार औद्योगिक देश ब्रिटेन में क्रान्ति होनी चाहिए थी; किन्तु कृषि-अधीन रूस और चीन में क्रान्ति

हुई, वह भी किसानों द्वारा। इंगलैण्ड, फ्रांस, अमरीका आदि में कल-कारखाने कम नहीं हैं। फिर भी वहां वर्ग-संघर्ष नहीं हुआ।" (पृ. ३१३)

कम्युनिस्ट कहेंगे कि धीरज धरिये, वहां भी भीतर सुलगती वर्ग-संघर्ष की आग प्रचंड रूप लेगी। साथ ही मार्क्स ने यह भी कहा था कि अमरीका और इंगलैंड में संसदीय व्यवस्था द्वारा भी समाजवाद की स्थापना सम्भव है।

और इसे कौन नहीं जानता कि चीन-रूस की क्रान्ति में किसानों का बहुत बड़ा हाथ था, लेकिन क्रान्ति के नेतृत्व में मजदूरों का हाथ बहुत महत्वपूर्ण रहा।

लेकिन भला महाराज इसे कब पसन्द करेंगे कि "सेठों के टुकड़े तोड़नेवाले" मजूरों में यह साहस हो कि वे अपने स्वामियों की सत्ता मिटाना चाहें! इसीलिए वह कहते हैं:

"कम्युनिस्ट आन्दोलन शुद्ध द्वेष एवं ईर्ष्या पर ही अवलम्बित है।" (पृ. २९९)

"कम्युनिस्टों का किसी की जायदाद पर बलात् आक्रमण तथा प्राचीन प्रणालियों पर आक्रमण सिद्ध करता है कि लोकसिद्ध न्याय एवं सत्य के आधार पर वे अभीष्ट सिद्ध नहीं कर सकते।" (पृ. ३०३)

"वर्गवादियों के मिथ्या प्रचार से वर्ग-भेद, वर्ग-कलह का सिद्धान्त भी फैलता जा रहा है। असल में तो यह न कोई सिद्धान्त है और न इसका कोई आधार ही है।" (पृ. ३०१)

कुछ आधार न होने पर भी यह आन्दोलन "फैलता ही जा रहा है", यह आश्चर्य की बात है। आज एशिया और योरप का बहुत बड़ा भाग और दुनिया की सवा दो अरब की आबादी में प्रायः एक अरब की आबादी पर कम्युनिस्टों का शासन कायम हो गया है। बाकी आधी दुनिया के मालिकों की भी नींद हराम हो गयी है। यह बात यदि तर्क से महाराज की समझ में नहीं आती, तो मानना चाहिए कि यह कलि-युग का प्रताप है। महाराज को "सत्य" की स्थापना के लिए यदि कभी माया या असत्य का सहारा लेना पड़े, तो उन्हें इसमें भी कोई उजर नहीं है। तभी तो सरासर निराधार बातें कहते वह नहीं हिचकते:

"मार्क्सवाद में बुद्धिजीवियों का महत्व नहीं जैसा है। सन् १९३६ के पूर्व तक साम्यवादी रूस में उन्हें मत देने का भी अधिकार नहीं था।" (पृ. ३१४)

जनमत लेने को जो मुंड गिनना समझता है, उसे मताधिकार की इतनी चिन्ता क्यों? पर करपात्री महाराज की जानकारी के लिए यह बता देना उचित है कि रूस में १९३६ से पहले भी उन्हीं को मतदान से वंचित किया गया था, जो राज्य के शत्रु होने से मतदान की सूची में शामिल नहीं थे, और उनकी संख्या हजार में एक भी नहीं थी।

महाराज का यह फरमाना भी गलत है:

"...काम न करनेवाले वृद्ध माता-पिता को एवं वृद्ध होने पर उसे भी कम्युनिस्ट राज्य में कोई स्थान नहीं है...।" (पृ. ३१६)

कम्युनिस्ट रूस में ५६ वर्ष के बाद हरेक कर्मचारी — मजूर या बुद्धिजीवी — को पेन्शन मिलती है। यदि वह काम करना चाहे, तो उसका अतिरिक्त वेतन भी मिलेगा।

सचाई यही है करपात्री जी महाराज!

मार्क्सवादी या समाजवादी किसी को ईश्वरभक्त होने से मना नहीं करते। इंगलैंड के एक कम्युनिस्ट समर्थक विद्वान् वहां के ईसाई चर्च के बहुत बड़े गुरु हैं। उनको ईश्वरवाद और मार्क्सवाद में इतना विरोध नहीं मालूम होता। किसी भी देश में ईश्वर-अल्ला-धर्म के माननेवाले कम्युनिस्ट समर्थक हो सकते हैं और हैं। विचारों की स्वतन्त्रता का कितना प्रचार है, यह इसीसे मालूम हो जायगा। हां, जहां तक मार्क्सवादी दर्शन का सवाल है, उसमें ईश्वर या धर्म का कोई स्थान नहीं है। लेकिन करपात्री महाराज समाजवादियों और मार्क्सवादियों को कच्चा गोइयां समझ कर उन्हें बरगलाना चाहते हैं:

"भारत में हजार में नौ सौ निन्नानवे समाजवादी धार्मिक एवं ईश्वरवादी होते हैं, परन्तु मार्क्सवादी दृष्टिकोण से वे गलत रास्ते पर ही समझे जाते हैं।... उनके मतानुसार भूत-प्रेत की कल्पना के समान ही ईश्वर की कल्पना है।" (पृ. ५५९)

"मार्क्सवादी और ईश्वरवादी दोनों का समन्वय हो नहीं सकता। अन्ततः जो ईश्वरवादी हैं, उन्हें मार्क्सवाद छोड़ना ही पड़ेगा।" (पृ. ५६०)

करपात्री महाराज के लिए ऐसा सोचना स्वाभाविक ही है, क्योंकि उनके लिए सेठ-राज्यवाद और रामराज्यवाद एक ही चीज है। आज की परिस्थिति में यदि वह राजा होते, तो केवल सेठों को ही परम ईश्वरभक्त मानकर आशीर्वाद दिया करते।

: ४ :

दास, शूद्र, स्त्री

१. दासता का समर्थन

रामराज्य आज की चीज नहीं है। वह आदिम कालीन है। भारत में उसकी समाप्ति अंग्रेजों ने १८३४ ई० में की, अर्थात् इसका उच्छेद हुए मुश्किल से सवा सौ वर्ष हुए हैं। धर्मप्राण हिन्दू राज्य नैपाल में तो अभी उसको नष्ट हुए मुश्किल से ३४ वर्ष ही हुए हैं। पर महाराज दासता को आज भी वेद और धर्मशास्त्रसम्मत मानते हैं :

"अरस्तू वैयक्तिक सम्पत्ति को मानता था।... दासता को प्राकृतिक, नैतिक एवं आवश्यक — इन तीन दृष्टिकोणों से वह उचित मानता था।" (पृ. ४०)

यही नहीं, करपात्री जी के मतानुसार भारत के लिए वह अभिशाप नहीं, वरन् वरदान था :

"दास-प्रथा को कितना भी निरर्थक, अस्वाभाविक या मूर्खतापूर्ण क्यों न कहा जाय, परन्तु किसी न किसी रूप में उसका अस्तित्व सर्वत्र है और रहेगा।... कौन नहीं जानता कि सोवियत संघ में सरकार से मतभेद रखनेवाले लोगों के साथ दासों की अपेक्षा भी बुरा बर्ताव किया जाता है ?... यही दास-प्रथा का नमूना है।" (पृ. २४४)

"आज के प्रजातंत्र, गणतंत्र सब की अपेक्षा दो हजार वर्ष पहले के अशोक के साम्राज्य की सुख-समृद्धि कहीं अधिक महत्वपूर्ण थी। उसमें सभी अपने को सुखी और समृद्ध अनुभव करते थे। पांच हजार वर्ष पहले युधिष्ठिर के शासन में तो धर्मराज्य था ही। लाखों वर्ष पहले

होनेवाले रामराज्य का मुकाबला करनेवाला कोई भी शासन न कभी हुआ और न भविष्य में ही होने की आशा है।" (पृ. २४४)

१८३४ से पहले अखंड दास-प्रथा चलती थी। दास-प्रथा में नर-नारी पशु की तरह बेचे जाते थे, जो आज से सात सौ वर्ष पहले गुजरात के निम्न दासी-विक्रय-पत्र से मालूम होगा :

दासी-विक्रय-पत्र

"संवत् १२८८ वैशाख शुदी १५ गुरावद्य इह श्रीमदणहिल्लपत्तने समस्तराजावली समलंकृतपरमेश्वरपरमभट्टारक ... श्रीमद्भीमदेवकल्याण विजयराज्ये दासी विक्रयपत्रमभिलिख्यते, यथा :

"राणाश्रीप्रतापसिंहेनानीता गौरवर्णा षोडशवार्षिकी पनुती नाम्नी दासी शिरसि तृणं दत्वा पंचमुखनगरविदितं चतुष्पथे रहाप्य विक्रीता। व्यवहारक आसधरेण दासीकर्मकरणाय राणाश्रीपतापसिंहस्य ५०४ चतुरधिकपंचशतानि द्रम्मान् दत्वा पनुती नाम दासी समस्तनगराधिवासि-चातुर्वर्ण्यलोकानां विदितमूल्येन गृहीता।

"अतः परं अनया दास्या व्यवहारकगृहे खण्डन-पेषण-गृहलिपन-संमार्जनन्धनानयन-पानीयोद्वहनादिकं मूत्रपुरीषोत्सर्गादिकं महिषी-गौ-अजा-दोहनादिकं दधिविलोडनं तथा क्षेत्रे-खलके तक्रानयनं चारिआनयनादिकं निन्दन-कर्तनादिकं क्षेत्रकर्म अन्यदपि गृहकर्म सर्वं अकुटिलबुद्ध्या करणीयम्। इत्थं प्रवर्तमानाया दास्या व्यवहारकेन देशकालानुरूपं विभवानुमानेन भोजनाच्छादनादिकं सर्वं अप्रार्थितं दातव्यम्। तथा अस्या दास्या व्यवहारकगृहे कर्म कुर्वत्वाः तस्या पिता, भ्राता, भर्ता वा धनिकत्वं विधाय कर्मविधातं कारयति, तदा व्यवहारकेण बन्धनताडनादिघातैर्निर्दयं ताडयित्वा पुनरपि समग्रपत्रलिखितदासीकर्मणि नियोजनीया। (अथ केशेष्वाकृष्य पादप्रहारैर्यष्टिप्रहारैश्च व्यापाद्यमाना म्रियेत ततः स्वामी निर्दोषः। चातुर्वर्ण्यलोकैः सर्वैरवधारणीयं, यत् सा स्वकर्मवशाद् दैवहता मृता। स्वामिनः पुत्रपौत्रकलत्रादिपरिवारसहितस्य गंगास्नानम्। अथ कूपतडाग-विषभक्षणादिना म्रियते, ततोपि पंचमुखनगरविदितं अस्तु 'स्वामी निर्दोष एव, एषा कृतपूर्वकर्मविपाकेन देवहता मृता।' प्रभोः सपरिवारस्य

गंगास्नानमेव ।) अस्योपरिलिखितविषेः पालनाय रक्षपालाः तथा नगरानिवासिनः साक्षिणश्च । इहार्थे राणाप्रतापसिंहस्य तथा रक्षपालानां चतुर्णां च यथानाम्नां स्वहस्तेन प्रदत्तमतानि । लिखितमिदं पत्रं उभयाभ्यर्थितेन पारथीजयताकेन ।"

हिन्दी अनुवाद

संवत् १२८८ (१२३१ ई०) वैशाख सुदी १५ बृहस्पतिवार। आज यहां (श्री अनहिलपाटन में) सारी राजावली से अलंकृत परमेश्वर परमभट्टारक ... श्रीमान् भीमदेव के मंगलविजयवाले राज्य में दासी-विक्रय-पत्र लिखा जाता है। यथा :

"राणा श्रीप्रतापसिंह द्वारा लायी गयी गोरे रंग की सोलह बरस की पनुती नामवाली दासी सिर पर तृण देकर पंचप्रमुख नगर को विदित (करा) चौरस्ते पर रखकर बेची गयी। खरीदार आसघर ने दासीकर्म करने के लिए श्री प्रतापसिंह को पांच सौ चार दाम (द्रम्य) देकर पनुती नामक दासी सारे नगर के निवासी चारों वर्णों के लोगों को विदित मूल्य से ली।

"इसके बाद इस दासी को, खरीदार के घर कूटना-पीसना, घर लीपना-बुहारना, ईंधन लाना, पानी उबाहना, पेशाब-पाखाना फेंकना आदि, भैंस-गाय-बकरी दुहना आदि, दही बिलोना तथा खेत-खलिहान में मट्ठा ले जाना, चारा लाना आदि, धुनना-कातना आदि, खेत का काम, और भी घर का काम सब अकुटिल बुद्धि से करना होगा। ऐसे काम करती दासी के लिए खरीदार को देश-काल के अनुकूल और सम्पत्ति के अनुसार भोजन-छाजन आदि सब बिना मांगे देना चाहिए। तथा इस दासी के खरीदार के घर काम करते समय जो उसका पिता, भाई या पति, धनिक बनकर काम बिगाड़े, तो खरीदार ताड़न-बन्धन आदि प्रहार से निष्ठुरतापूर्वक पीटकर पत्र में लिखित सारे काम में उसे लगावे। (फिर झोंटा पकड़ पैर के प्रहार, यष्टि के प्रहार से पीटी जाकर यदि मर जाये, तो चारों वर्णों के सब लोगों को समझना चाहिए कि स्वामी निर्दोष है, और वह दासी अपने कर्मवश दैव से मरी। इसके छूतक से

शुद्धि के लिए पुत्र, पौत्र, भार्या सहित स्वामी को केवल गंगास्नान करना होगा। यदि वह तालाब में गिरने से, विष भक्षण आदि से मरे, तो भी पंचप्रमुख नगर को विदित हो कि स्वामी निर्दोष है, यह पहले किये कर्म के विपाक से दैव की मारी मरी। मालिक को सपरिवार गंगास्नान ही करना होगा।) इस ऊपर लिखे कर्तव्य को पालन कराने के लिए रक्षपाल (पुलिस) नगरवासी साक्षी (हैं)। इस बात में राणा प्रतापसिंह तथा चारों रक्षपालों ने नामानुसार अपने हाथ से (लिखकर) मत दिया। इस पत्र को दोनों (पक्षों) द्वारा प्रार्थित जयता पारथी ने लिखा।"

दासता का कितना घिनौना रूप हमने अभी ऊपर उद्धृत पनुती दासी के विक्रय-पत्र में देखा। लेकिन महाराज इसका कितना मनमोहक चित्र उपस्थित करते हैं :

"दासत्व-प्रथा काल में भी दास भले काम करने लायक न हो... उसके कुटुम्ब का उत्तरदायित्व उसके स्वामी पर रहता था।...

"वस्तुतः उस समय के ये दास नाममात्र के ही दास थे, वे तो कुटुम्ब के एक प्रकार से सदस्य समझे जाते थे। इसीलिए कुटुम्बपति ऐसे दासों की भोजन व्यवस्था के अनन्तर ही अपने भोजन-वस्त्र की व्यवस्था करता था।..." (पृ. ३४०)

दासता फिर लौटकर आनेवाली नहीं है, यह शायद करपात्री जी की ऋतंभरा प्रज्ञा भी समझती है। तो भी त्रिकालज्ञ महर्षियों के निर्भ्रान्त शास्त्रों का समर्थन करना उनका कर्तव्य है, शायद इसीलिए उन्होंने इसका मंडन किया है।

२. शूद्र नीच

शूद्र भी विधि के विधान के अनुसार अस्तित्व में आया। वह अपने पूर्व कर्मों के कारण पैदा हुआ, और उसके शरीर में शायद वह परमाणु नहीं है, जो ब्राह्मणों या करपात्री महाराज के शरीर में है। वह उस परमाणु से बना है जो शूद्र जाति के आरम्भकर्ता का है :

"शूद्रादि जात्यारम्भक कर्मविशिष्ट भूत, तन्मात्राओं या परमाणुओं को हटाकर ब्राह्मणजात्यारम्भक कर्मविशिष्ट भूतों या परमाणुओं से ब्राह्मण जाति को व्यक्त कर सकते हैं।" (पृ. २२१)

"यज्ञों में सदा सेवानिरत शूद्र से सेवा लेकर ... ब्राह्मण को याजन का कार्यभार देकर सभी को द्रव्य समर्पण किया जाता था।" (पृ. २६१)

हां, शू को वराटिका (कौड़ी) दी जाती थी, और ब्राह्मण के लिए कहा गया था : "बर्हिषि रजतं न देयम्," अर्थात् यज्ञ में चांदी नहीं, बल्कि सोना देना चाहिए।

करपात्री जी का कहना है कि ब्राह्मण जन्म से होता था। उसके पूर्वले कर्म बलवान होते थे, तभी वह ब्राह्मणी के गर्भ में आता था। काले भुजंग पंक्ति ब्राह्मण को देखने से ऊपर से चाहे ब्राह्मणता न दिखाई पड़ती हो, पर उसके भीतर वह गुण अवश्य है :

"...ब्राह्मणादि में ऊपरिगत भेद भासित न होने पर भी शास्त्र प्रमाणगम्य विभिन्न गुण-धर्मों, रक्तों के भेद से उनमें भेद मानना अनिवार्य है।" (पृ. २८४)

महाभाष्यकार पतंजलि कपिल पिंगल केश (अंग्रेजों की तरह गोरे और पीले बाल) वालों को ब्राह्मण बतलाते हैं। आज तो कोई भी ब्राह्मण इसको मानने के लिए तैयार नहीं है। वस्तुतः अपने को आर्य कहनेवाले जिन लोगों में काले आदमी मिलते हैं, उन पर प्राचीन निषाद जाति के रक्त का प्रभाव है। पर महाराज ऐसे सत्य को मानने के लिए बाध्य नहीं हैं, यह तो निर्बुद्धि ऐतिहासिकों को ही मुबारक हो।

रंग पर परदा डालकर वर्णों के बारे में वह फरमाते हैं :

"शुभाशुभ कर्मों के अनुसार ब्राह्मण, क्षत्रियादि जातियां प्राप्त होती हैं।" (पृ. २८५)

"वैदिकों के मत से ब्राह्मणत्वादि जातियां वृक्षत्वादि की तरह प्रत्यक्ष सिद्ध हैं।" (पृ. २८६)

प्रत्यक्ष सिद्ध कहना गलत है धर्मावतार! यदि कहीं एक ही तरह का कपड़ा पहने हुए शूद्र और ब्राह्मण के शिक्षित कुमारों को जमा किया जाय, तो आप जैसे ऋतंभरा प्रज्ञा के धनी भी उन्हें पहचान नहीं सकते।

क्षण भर के लिए माना कि कर्म के कारण शूद्र आदि योनियों में जन्म होता है। पर, कर्म के बारे में यह निर्णय किसने किया? इसका उत्तर देते हुए वह कहते हैं:

"महात्मा, आप्तकाम, परम विरक्त महर्षियों ने परम सूक्ष्म ऋतंभरा दृष्टि से अपौरुषेय वेदादि शास्त्रों के आधार पर कर्म का निर्णय किया है।" (पृ. ५५०)

शूद्रों के भाग्य का फैसला ऋषियों द्वारा निर्णीत कर्म द्वारा कर दिया गया है। उनको कैसे रहना चाहिए या समाज में उनका क्या स्थान है, इसके बारे में महाराज फरमाते हैं:

"...वर्णानुसारिणी जीविका होती है।" (पृ. ५५४)

"प्राचीन भारत में शूद्रों का विद्या पढ़ना अन्याय था।" (पृ. ५६०)

करपात्री जी जैसे ब्राह्मणों का ही यह प्रताप है कि आज-कल की शोषित-दलित जातियों ने नारा बुलन्द किया है: "ब्राह्मण, क्षत्री, लाला; तीनों का मुंह काला; तीनों को देश निकाला।" यद्यपि इनमें लाला को भी शोषकों में शामिल किया गया है, पर लाला से यदि कायस्थ अभिप्रेत है, तो उन्हें तो बहुत से कट्टर ब्राह्मण भी शूद्र कहते हैं। करपात्री जी का आजकल शूद्रों का राज कहने का अभिप्राय भी यही है कि उत्तर प्रदेश के शासन के महासूत्रधार कायस्थ हैं। लेकिन अधिकार-वंचित शोषितों में अब केवल करपात्री जी के वर्णाश्रम में गिनी गयी जातियों की ही गिनती नहीं होती। शोषित किसी जाति का हो, वह शोषित वर्ग का है और उसका हित भी शोषित वर्ग के हित में सम्मिलित है। यदि करपात्री जी के रामराज्य की चले, तो शूद्रों को सिर्फ सेवा करने का अधिकार मिले—बर्तन-भांडा मलें, लकड़ी काटकर लायें, पाखाना साफ करें और जो जूठा-कांटा मिल जाय, उससे आधा पेट भरकर सो जायें। उनको विद्या पढ़ने का अधिकार नहीं। विद्या न पढ़े होते, तो कायस्थ कहीं के न रहते, और न जगजीवनराम केन्द्रीय सरकार के मंत्री बनते। करपात्री जी का रामराज्य जिसे निषिद्ध समझता है, उसे कलियुग विहित कर रहा है। आज हजारों ब्राह्मण नौकरियों से वंचित होकर कहते हैं कि यदि हमारा जन्म अछूतों में हुआ होता, तो नौकरी मिलने में आसानी

होती । आज 'शूद्रों' के साथ ब्राह्मणों की दाल-रोटी एक हो गयी है। करपात्री जी के पंक्ति ब्राह्मण भी अब अछूतों के चौके में शामिल होते हैं। खैर, उनमें भक्षाभक्ष्य की उतनी कड़ाई तो है भी नहीं, क्योंकि वह घर पंक्ति ब्राह्मण का नहीं हो सकता जिसके अगवाड़े-पिछवाड़े कुछ हड्डियां न दिखाई पड़ें। हां, अभी भी ब्राह्मण-शूद्रों के बीच ब्याह का चलन नहीं हुआ है, हालांकि प्राचीन काल में ब्राह्मण तीनों वर्णों की लड़कियां ब्याह लेते थे। पराशर के सुपुत्र व्यास मछुआ शूद्री के पुत्र थे, और शायद इसीलिए काले थे। हां, ब्राह्मण लड़की शूद्र के घर नहीं जा सकती थी। कलियुग ने अनुलोम और प्रतिलोम दोनों विवाहों का रास्ता खोल दिया है। अभी रास्ते पर इक्के-दुक्के मुसाफिर चल रहे हैं, लेकिन वह समय नजदीक है, जबकि रोटी की तरह बेटी भी सबकी एक हो जायगी और ऊंच-नीच का बंधन टूट जायगा।

३. स्त्री परतंत्र

चाहे त्रिकालदर्शी महर्षि हों या तपःपूत महापुरुष, सभी स्त्रियों से पैदा होते हैं। पर स्त्री जाति के बारे में उनका यह फतवा है: "न स्त्री स्वातंत्र्यमर्हति।" करपात्री जी इसे विधि का महा-विधान मानते हैं:

"अनादि काल से वेदादि शास्त्रों के अनुसार स्त्रियां परतंत्र रहती हैं, पातिव्रत पालन करती हैं।" (पृ. २८७)

"अब भी देखा जाता है कि माता, पिता, भ्राता के पूर्ण नियंत्रण में कन्या रहती है। वह नौ-दस वर्ष की अवस्था में ब्याही जाती है। श्वशुर कुल में जाते ही परदे में रहती है। ज्येष्ठ, श्वशुर तक से भी नहीं बोलती, घर के भीतर सदा घूंघट की ओट में रहती है। जहां घूंघट की प्रथा नहीं है, वहां भी दृष्टि संवरण रूप पर्दा है ही। बिना कुटुम्बियों के अकेले उसका कहीं जाना-आना सम्भव ही नहीं। किसी बाहरी व्यक्ति से बोलना तक जब असम्भव है, तब स्वतंत्रता मिलने की तो बात ही क्या? ऐसी दशा में कुटुम्ब में कहीं व्यभिचार भले ही हो जाये, परन्तु परजाति के साथ सम्बंध तो असम्भव ही है। रजस्वला होने पर स्त्री

के मन में विकार आने पर किसी पर मन जा सकता है। इसीलिए रजस्वला होने के पहले ही विवाह करने का नियम है। पातिव्रत धर्म, वैधव्य पालन, सती धर्म आदि के प्रचार पर जिनकी दृष्टि है... उन्हें स्त्रियों, विशेषतः प्राचीन कुलांगनाओं की शुद्धि पर अविश्वास का कोई कारण नहीं है।... पंजाबी, मैथिल, बंगाली, द्रविड़ ब्राह्मणों के रूप-रंग में भेद होने पर भी ब्राह्मणत्व समान ही रहता है।" (पृ. २२२-२३)

कपिल पिंगल केश ब्राह्मणों की सन्तानों में कृष्ण कज्जल केश कैसे हुए, इसका उत्तर मानव-विज्ञान के वेत्ता यही देते हैं कि किसी पीढ़ी में निषाद-रक्त का सम्पर्क हुआ होगा। दासता के युग में दास के रूप में निषाद ब्राह्मण-कुटुम्ब के सदस्य होते ही थे।

करपात्री जी स्त्री को जंगम सम्पत्ति से बढ़कर नहीं मानते, तभी तो वह कहते हैं :

"कन्या पर उसके माता-पिता का स्वत्व रहता है। पिता जिसे देता है, वही कन्या का पति होता है।" (पृ. ५७२)

"रामराज्य-प्रणाली में बाल्यावस्था में ही लड़कियों की शादी हो जायगी। पुरुषों का काम घर के बाहर होगा और स्त्रियों का घर के भीतर।" (पृ. ५७७)

स्त्रियों को कलियुग जिस तरह से फुसला रहा है, उस पर क्षोभ प्रकट करते हुए महाराज कहते हैं :

"स्वतंत्रता, आत्म-निर्णय का अधिकार आदि मोहक नामों से स्त्रियों को बरगलाकर अपना शिकार बनाना और उन्हें मजदूरी या वेश्यावृत्ति करने के लिए निराश्रय एवं असहाय छोड़ देना उनके साथ घोर अन्याय करना है।... मानव जीवन और गृह को सरस एवं मांगलिक बनानेवाली स्त्री के सिरपर कमाने का भार न होना ही अच्छा है।"

(पृ. ५७६)

"समाजवादी और समष्टिवादी समाज में स्त्री भी समाज का परिश्रम या पैदावार करनेवाला अंग समझी जाती है। उसे केवल पुरुष के भोग और रिझाव का साधन नहीं समझा जाता।... रामराज्य-प्रणाली में स्त्री गृहलक्ष्मी रहेगी।" (पृ. ५८१)

"उसे मिलों में मजूरी करने नहीं जाना पड़ेगा।... मार्क्सवाद में स्त्रियों के लिए सरकारी गुलामी और सरकारी मजदूरी ठीक समझी जाती है, परन्तु अपने सास-ससुर, पति-पुत्र आदि की सेवा, लालन-पालन असह्य है।" (पृ. ५८२)

करपात्री जी महाराज, मालूम देता है, एकाक्षी भी हैं। उन्हें मालूम नहीं कि ६० प्रतिशत स्त्रियां पर्दे में नहीं रह सकतीं। उन्हें घर और बाहर का काम करना पड़ता है। आज केवल "शूद्रों" के घर का ही नहीं, बल्कि करपात्री जी के ब्राह्मणों-क्षत्रियों के घर का भी यही हाल है। पर्दा कराने के लिए हरेक गृह को रनिवास बनना होगा, जो तभी सम्भव हो सकेगा जब सबों को हजार-दो-हजार मासिक की आय हो। इसलिए केवल समाजवादी समाज में ही स्त्रियां पैदावार करनेवाला अंग नहीं समझी जातीं, बल्कि सनातन से उनके लिए यही विधान रहा है। असूर्यपश्याएं हर समय इनी-गिनी ही हुआ करती थीं। सास-ससुर, पति-पुत्र की सेवा और लालन-पालन का कोई विरोध नहीं करता। पर, सब काम एकतरफा नहीं होना चाहिए। पुरुष को भी इसमें हाथ बंटाना है। "सास-ससुर के राज में साम्राज्ञी हो"—यह कहने मात्र से स्त्री संतुष्ट नहीं हो सकती। स्त्री का स्थान समाज में पुरुष के समान है, इसका यह अर्थ नहीं कि जिस काम के लिए वह शारीरिक तौर से असमर्थ है, उसे उस पर थोपना चाहिए। बुद्धि में गार्गी, मदालसा, लीलावती जैसी महिलाएं पुरुषों से कम नहीं थीं। याज्ञवल्क्य ने गार्गी को तर्क से नहीं परास्त किया, बल्कि सिर गिराने की धमकी से। स्त्री स्वातंत्र्य के योग्य नहीं है—यह पुराने युग के पोंगा-पंथियों की ऐसी बकवास है जिसे आज की दुनिया में सुननेवाले अक्ल का अजीर्ण रखनेवाले सेठ ही हो सकते हैं। राजाओं की पिछली पीढ़ी ने ही असूर्यपश्याओं को खुले आकाश में ला रखा, और अब तो चमगादड़ों के छिपने के उनके अन्धकूप भी खतम हो चुके हैं।

: ५ :

विकासवाद, धर्म, ईश्वर, आत्मा

करपात्री जी महाराज दंडी संन्यासी हैं। शंकराचार्य का अद्वैत वेदान्त उनका सिद्धान्त होना चाहिए। पर उनके पोथे को देखने से मालूम होता है कि अवसरवाद ही उनका सिद्धान्त है। तभी तो आकाश तक बुलन्द वेदान्त ज्ञान को वह थैलीशाहों के समर्थन में लगाना चाहते हैं। उन्होंने बतलाया है कि शंकर का मायावाद यद्यपि बौद्ध विज्ञानवाद से निकला है, लेकिन अपने उद्गम के दृढ़ अंश को हटाकर ही। उसमें जगत की सत्यता का अपलाप किया जाता है। जगत वस्तुतः तीनों काल में कुछ भी नहीं है, यह केवल माया है। जैसे रस्सी में सांप का भ्रम, वैसे ही ब्रह्म में जगत भ्रममात्र है। सेठ भी भ्रममात्र हैं। फिर उनके लिए महाराज क्यों इतनी माथा-पच्ची करते हैं? वह कह सकते हैं कि सभी भारतीय दर्शन जगत को माया नहीं मानते और उनकी तरफ से हम विकासवाद का खंडन और ईश्वर, आत्मा की स्थापना करते हैं। उनकी स्थापना पर जरा सरसरी निगाह डालिए।

१. विकासवाद

मार्क्सवाद भौतिकवादी दर्शन है। वह भूत को ही सबका कारण मानता है; और उसकी दृष्टि में भूत कोई अचल, कूटस्थ परमाणु या वस्तु नहीं है, बल्कि वह देश-काल में अत्यंत चल, गमनशील, क्षणिक है। भूत की अपनी स्वरस गति ही जगत और उसके हरेक पदार्थ के जन्म और विकास का कारण है। इसलिए और किसी कारण की आवश्यकता नहीं। इसके विरुद्ध महाराज का कहना है :

"जड़ सामग्री से ही सब वस्तुओं की उत्पत्ति हो जाती है, ऐसा नहीं कहा जा सकता। सांख्यवादी भी स्वतन्त्र, व्यापक, असंग, चेतन, आत्मा और प्रकृति के समन्वय से ही सृष्टि-प्रपंच मानते हैं। इसी सम्बंध में सांख्यों का 'पंगु-अंध-न्याय' प्रसिद्ध है। जैसे पंगु चल नहीं सकता और अन्धा देख नहीं सकता। दोनों का जब मेल होता है, पंगु को कन्धे पर चढ़ाकर जब अन्धे के पैर और पंगु के आंख का सहयोग मिलता है, तब गमनादि क्रिया सम्पन्न होती है। वैसे ही अन्ध के तुल्य अचेतन प्रकृति और पंगु के तुल्य गति-शक्तिरहित चेतन पुरुष, इन दोनों के सम्बंध से सृष्टि-प्रपंच चलता है। व्यवहार में अचेतन रथादि की प्रवृत्ति चेतन-अश्व के आधार पर ही होती है। यांत्रिक प्रवृत्तियों के मूल में संयोजक होता है। एकत्रित सामग्री कर्ता नहीं बन जाती। संघात या समुदाय मात्र में कर्त्तृत्व नहीं हो सकता।" (पृ. १४३)

वेदान्त से काम नहीं चला, तो महाराज ने सांख्य का सहारा लिया। सांख्य का पुरुष चेतन एक चेतन नहीं, बल्कि अनन्त चेतन है। जब वह क्रिया करने की शक्ति नहीं रखता, तो ऐसे ठूंठ (स्थाणु) से प्रकृति में क्या गति हो सकती है। घोड़ा यदि ठूंठ होता, तो क्या वह कभी रथ को चला सकता था? निष्क्रिय पुरुष प्रकृति के विकास के लिए बिल्कुल बेकार है। प्रकृति में यदि गति है, जैसा कि सांख्य मानता है, तो उसको कार्य करने के लिए किसी की आवश्यकता नहीं। सामग्री या अनेक कारणों का एकत्रित होना कारण बन जाता है। इसे बौद्ध-दर्शन बहुत सुन्दर रीति से रखता है: "**न चैकमेकमेकस्मात सामग्र्या सर्व संभवः।**" — प्रमाणवार्त्तिक।

एक ब्रह्म से कुछ बन नहीं सकता, सभी कार्य कारण सामग्री से उत्पन्न होते हैं। आवश्यक कारणों की समग्रता में यदि एक तुच्छ कारण का भी अभाव हो, तो कार्य कभी नहीं बन सकता। दुनिया में एक भी दृष्टान्त नहीं है जिसमें केवल एक कारण ने कार्य को उत्पन्न किया हो। घट के निर्माण में केवल कुम्हार कारण नहीं होता, न केवल मिट्टी ही। बल्कि उसके लिए अनेक कारण आवश्यक होते हैं, जैसे चक्का, डंडा, पानी, काटने का सूत आदि-आदि। करपात्री जी के दर्शन में तो केवल

पंगु ही है, अन्ध तो वहां मायामात्र है, इसलिए "**पंगु-अन्ध-न्याय**" का वह प्रयोग नहीं कर सकते।

गति या क्षण-क्षण आमूल परिवर्तन विश्व का सार्वत्रिक नियम है। यह देश-काल की अव्यक्त गति को व्यक्त करता है और व्यक्त को भी अव्यक्त करता है। इसीसे जीवन-विकास के सिद्धान्त की पुष्टि होती है। विकासवाद कोई कोरी दिमागी उड़ान नहीं है, न अफीमची की पिनक है। यह पृथ्वी के शरीर में अवशिष्ट अवशेषों और गर्भ के समय होनेवाली प्रगति से सिद्ध होता है। मई १९५८ की **त्रिपथगा** में प्रोफेसर जे० बी० एस० हालडेन का एक सुन्दर लेख है। हालडेन संसार के सर्वश्रेष्ठ जीवशास्त्रियों में गिने जाते हैं। उन्होंने लिखा है :

"प्राचीन भारतीय विचारकों ने परिणाम या परिवर्तन का सिद्धान्त प्रतिपादित किया, परन्तु विकास का आधुनिक सिद्धान्त इससे भिन्न है। इस सिद्धान्त का प्रतिपादन सबसे पहले फ्रांस में लेमार्क ने किया। लेकिन जीवशास्त्रियों को इस सिद्धान्त की सच्चाई का विश्वास सबसे पहले डारविन ने कराया। डारविन ने विकास के सिद्धान्त को वैज्ञानिक ढंग से समझाया है। और अब मैं समझता हूं कि उनका मत अधिकांश में ठीक है।...विकास की क्रिया के दो प्रकार के प्रमाण मिलते हैं। एक तो प्रस्तरीभूत कंकालों से और दूसरा प्रजनन विज्ञान से—अर्थात् जीवित पौधों और धातुओं के वास्तविक प्रजनन से। जिन पुरातन चट्टानों में पर्याप्त रूप में सुरक्षित प्रस्तरित अस्थियां मिलती हैं, वे लगभग ५० करोड़ वर्ष पुरानी हैं। वैसे इससे भी पुराने प्रस्तरित कंकाल मिले हैं, और सम्भव है कि पृथ्वी पर जीव-सृष्टि की उम्र इससे दुगुनी हो। पृथ्वी के बहुत से भूभागों में कोई प्रस्तरीभूत कंकाल नहीं मिलते। उदाहरण के रूप में दक्षिण (भारत) का जन-निर्माण ज्वालामुखियों के जमे हुए लावे से हुआ है। अन्य भाग में, जैसे गंगा के कांठे पर कीचड़-मिट्टी जमा है। लखनऊ और कलकत्ते के बहुत नीचे जो चट्टानें हैं, उनमें पुराने पथराये कंकाल हो सकते हैं।" (**त्रिपथगा**, पृ. २०-२१)

हालडेन विकासवाद में विष्णु के अवतारों का उदाहरण देते हुए समझाते हैं :

"३५ करोड़ वर्ष पहले रीढ़ की हड्डियोंवाले जन्तुओं में मछलियां (मत्स्य-अवतार) सबसे ज्यादा विकसित थीं। २५ करोड़ वर्ष पहले उनका स्थान रेंगकर चलनेवाले जन्तुओं (कूर्मावतार) ने लिया था। ६ करोड़ वर्ष पहले स्तनपायी चौपाये, जो वाराहों की तरह रहे होंगे, सबसे विकसित थे। डेढ़ करोड़ वर्ष पहले उनमें मानवों जैसे कुछ गुण आ गये थे (नृसिंह अवतार)।...१० लाख वर्ष पहले सीधे खड़े रहनेवाले बौनों (वामन) की जाति—जो मनुष्य तो नहीं थी, परन्तु बन्दरों के मुकाबले में मनुष्य से अधिक मिलती-जुलती थी — रीढ़ की हड्डियों-वाले जन्तुओं में सबसे अधिक विकसित थी।..." (उपरोक्त, पृ. २२)

पथरायी हड्डियों के किसी जन्तु की हड्डी होने के बारे में कोई सन्देह नहीं कर सकता। पथरायी हड्डियों का काल-निर्णय भी काल्पनिक नहीं हैं। इस बारे में हालडेन अपने लेख में कहते हैं:

"मैं यह तिथियां कुछ विश्वास के साथ पेश कर रहा हूं, क्योंकि चट्टानों में रेडियो-सक्रियता से उत्पन्न पदार्थ के जमा रहने के कारण अब इस बात का ठीक-ठीक पता लगाया जा सकता है कि ये चट्टानें कितनी पुरानी हैं।" (पृ. २२)

विज्ञान में आजकल विकासवाद को सर्वतन्त्र सिद्धान्त माना जाता है। उसे फूंककर उड़ाने की कोशिश करना उपहासास्पद है।

लेकिन इस बारे में महाराज का कहना है: "शरीर-तुलना-शास्त्र से विकास सिद्ध नहीं होता।" (पृ. १५८)

लेकिन उनका यह कथन भी वितंडावाद से अधिक महत्त्व नहीं रखता। क्योंकि हालडेन उसी लेख में कहते हैं:

"तुलनात्मक भ्रूण विज्ञान से भी हमें इसी बात का पता चलता है। परस्पर सम्बंधित जन्तुओं के विकास की प्रारम्भिक क्रिया प्रायः एक जैसी होती है। अनेक जन्तु, जो वयस्क होने पर एक दूसरे से नहीं मिलते, वे भी भ्रूण अवस्था में परस्पर मिलते हैं।" (त्रिपथगा, पृ. २३)

विकासवाद ईश्वरवादी धर्मों पर इतना जबर्दस्त प्रहार करता है कि उसके सामने वे टिक नहीं सकते। अपने जघन्य पूंजीवाद के लिए धर्म और ईश्वर को सबसे बड़ी ढाल माननेवाले अमरीका ने इसीलिए

इस पर ऋतंभरा—सत्य ढोनेवाली—प्रज्ञा कहती है : "उपर्युक्त बातों पर विचार करने पर भी विकास सिद्ध नहीं होता।" (पृ. १७१)

"अनुमान के आधार पर ही विकास की इमारत खड़ी है, प्रत्यक्ष परीक्षण का उसमें नाम तक नहीं है।" (पृ. १७६)

"वेदों और पुराणों से डारविन का विकास कथमपि सिद्ध नहीं हो सकता।" (पृ. १६५)

"वेदान्त मत में तो भौतिक तत्वों से भिन्न व्यापक आत्मा स्वतंत्र मान्य है।" (पृ. १७७)

"कर्म एवं उपासना के समुच्चय से ब्रह्मान्त देवलोकों की और केवल कर्मकांड से पितृलोक की प्राप्ति होती है। जो लोग कर्म और उपासना दोनों से ही भ्रष्ट हैं, पाशविक काम, कर्म, ज्ञान में निरत हैं, उन्हीं के लिए कीट, पतंगादि योनियों में जन्म कहा गया है।... इनमें जन्म-मरणादि कष्ट ही अधिकांश भोगना पड़ता है।... द्वापर, कलियुगों में रजोगुण, तमोगुण के विस्तार, पाप-प्रवृत्ति की बहुलता आदि से क्षुद्र जन्तुओं की बहुतायत होती है।... ईश्वरीय, शास्त्रीय प्रवृत्ति के अनुसार मनुष्य बहुत कुछ अनुकूल परिवर्तन कर सकता है।" (पृ. १६१)

२. ईश्वर

धर्म में ईश्वर का रहना अनिवार्य है, यह धारणा सरासर गलत है। बौद्ध धर्म और संस्कृति से प्रभावित लोगों की संख्या दुनिया में ८० करोड़ से कम नहीं। उसमें प्रायः सारा चीन, जापान, कोरिया, मंगोलिया, कम्बोज, थाईभूमि, बर्मा, लंका आ जाते हैं। भारत भी अब अबौद्ध देश नहीं रहा। पिछले एक साल में नगण्य संख्या रखनेवाले बौद्ध अब ४०–५० लाख हो गये हैं। यह महान धर्म ईश्वर को नहीं मानता। १६३२ में लन्दन की एक घटना है। वहां सब धर्मों की एक सभा बनायी जा रही थी, जिसका पहला नियम रखा गया था : ईश्वर की सन्तान होने से सभी मनुष्य भाई-भाई हैं। मेरे मित्र भदन्त आनन्द कौसल्यायन बौद्धों के प्रतिनिधि होकर उसमें गये थे। उन्होंने कहा कि जब तक

ईश्वर का शब्द इस नियम में से नहीं निकाला जाता, तब तक बौद्ध इसमें सम्मिलित नहीं हो सकते। एक कादियानी मुसलमान भाई को बड़ा आश्चर्य हुआ और वह कह उठे: "या अल्ला, ऐसा भी कोई मजहब है जिसमें ईश्वर न हो।" पर यह तथ्य है कि बौद्ध ईश्वर को नहीं मानते। बौद्ध ही क्यों, जैन भी ईश्वर को नहीं मानते। करपात्री महाराज का वेदान्त भी ईश्वर को नहीं मानता। ईश्वर का काम है जगत की सृष्टि, धृति और संहार करना। अद्वैत ब्रह्म निष्क्रिय है, वह ऐसा कुछ नहीं कर सकता। पर लोगों को धोखा देने के लिए अद्वैतवादी भी सभी तरह के हथियार इस्तेमाल करने के लिए तत्पर रहते हैं, यह करपात्री जी के प्रयत्न से मालूम होता है। वह कहते हैं:

"ईश्वर जगत के भीतर रहता हुआ भी कमल-पत्रवत् निर्लेप रहता है।" (पृ. १३४)

तब भी वह उसे "प्राकृतिक पदार्थों का मूल कारण" बताते हैं।

"यंत्रों का विकास जैसे किसी चेतन की बुद्धि का परिणाम है, वैसे ही विश्व का विकास भी किसी चेतन या ईश्वर से संभव है।" (पृ. १४८)

"वस्तुतः प्राणियों के जाति, आयु और भोग उनके कर्मानुसार ईश्वर द्वारा ही प्राप्त होते हैं।" (पृ. १५९)

करपात्री महाराज यहां जिस ईश्वर की बात कर रहे हैं, वह उनके वेदान्त में खपुष्प, गधे की सींग या वन्ध्या-पुत्र से बढ़कर कुछ नहीं है। उनके यहां सच्चा तत्व केवल ब्रह्म है:

ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नापरः।

और ब्रह्म निष्कल्प और निष्क्रिय है।

वह भौतिकवादी विकासवादियों पर आक्षेप करते हुए कहते हैं:

"जब प्रकृति हर जगह मौजूद है, हर जगह के लिए जलवायु अनुकूल है, तब वहां अमीवा पैदा होकर कोई नयी जाति क्यों नहीं बना डालता।" (पृ. १६३)

प्रकृति ब्रह्म की तरह कोई एक वस्तु नहीं है, काल और देश में उसका अनन्त प्रवाह है। हर जगह की जलवायु भी अनुकूल नहीं है। फिर अनुकूल जलवायु में भी किसी जन्तु के विकास में करोड़ों वर्ष

लगते हैं। हां, यदि विकासवाद में भी ऋषि होते, तो शायद उनके कथनमात्र से ऐसा विकास हो जाता! करपात्री जी के मायावाद में कहा जाता है :

"जड़ संसार ... प्रकृति के हलचल मात्र का परिणाम नहीं है, किन्तु अखंड सत्ता, अखंड बोध, परमानन्दस्वरूप परमात्मा की अघटित घटना पटीयसी मायाशक्ति का परिणाम है। ... महत्तत्व का अव्यक्त तत्व और उसका कारण स्वप्रकाश सतत्व।" (पृ. २१३)

जैसा कि पहले बतलाया जा चुका है कि उक्त तत्व निष्क्रिय है और उसके अतिरिक्त कोई दूसरा तत्व मानने पर अद्वैतवाद खत्म हो जायगा। जब माया भ्रम है, तब उसमें शक्ति काहे की, और अखंड बोध सतत्व में माया या भ्रम कैसे आ सकता है?

करपात्री महाराज तर्क करते हुए हरेक वस्तु के मूल को ढूंढते-ढूंढ़ते अन्तिम मूल पर पहुंचते हैं; और फिर पलट कर कहते हैं :

"अन्तिम मूल समूल मानने से अनवस्था प्रसंग होगा। अतः उसे अमूल मानना आवश्यक है।" (पृ. २१३)

अर्थात् हर वस्तु का कारण ढूंढ़ा जाय। हम जगत का कारण ढूंढ़ते-ढूंढ़ते अति-सूक्ष्म ब्रह्म तक पहुंचते हैं। कोई तार्किक, जैसा कि गार्गी ने याज्ञवल्क्य से कहा था, पूछ सकता है कि यदि हरेक वस्तु का कारण अवश्य होता है, तो ब्रह्म का कारण क्या है? याज्ञवल्क्य का उत्तर था : यदि तू ऐसा तर्क करेगी, तो "मूर्धा ते विपतिश्यति" (तेरा सिर गिर जायेगा)। किन्तु इसे शिष्ट उत्तर नहीं माना जायगा।

आगे महाराज फरमाते हैं :

"निर्विकल्प समाधि-दशा में ईश्वर-तत्व का साक्षात्कार होता है।" (पृ. २१७)

निर्विकल्प समाधि को बुद्ध भी मानते हैं, और शंकराचार्य ने बुद्ध को "योगिनां चक्रवर्ती" कहा है। अगर निर्विकल्प समाधि में ईश्वर का साक्षात्कार होता, तो बुद्ध और बौद्ध अनीश्वरवादी क्यों होते? जिस तरह भूत-प्रेत पर जिसका विश्वास हो, वह आधी रात के किसी एकान्त

मशान आदि में जाने पर आतंकित हो भूत को देखने लगता है, वैसे ही निर्विकल्प समाधि में ईश्वर देखने की भी बात है।

ईश्वर यदि इस संघर्ष और दुखमय जगत का कर्ता है, तो इससे न्यायी नहीं, बल्कि अन्यायी ही सिद्ध हो सकता है। दुनिया की अधिकांश जनता हजारों वर्षों से नरक की यातना सह रही है। यदि ईश्वर में जरा भी दया का लेश होता, तो इसे वह दूर कर सकता था। इसके लिए वादरायण की यह बात करपात्री जी कह सकते हैं :

वैषम्यनैर्घृण्ये, न सापेक्षत्वात्। —ब्रह्मसूत्र २।१।३४

अर्थात् ईश्वर पर भेदभाव करने और निर्दय होने का दोष नहीं लग सकता, क्योंकि ईश्वर कर्मानुसार ही लोगों को दुख-सुख देता है। लेकिन, बादरायण की यह बात कौषीतकि उपनिषद् के सामने तुच्छ है :

एष एव साधु कर्म कारयति यमेभ्यो धो निनीषते।

ईश्वर जिसे नीचे ले जाना चाहता है, उससे पाप करवाना है।

कृष्ण की गीता भी इसी बात पर जोर देती है :

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।
भ्रामयन् सर्वभूतानि यन्त्रारुधानि मायया॥

जब हृद्देश में बैठा ईश्वर सारे प्राणियों को यन्त्र की तरह घुमा रहा है, तो विचारों से पाप करवा कर दंड देना कौन सा न्याय है ?

करपात्री महाराज कहते हैं :

"ईश्वर यदि सत्य वस्तु है, तो किसी के चाहने या न चाहने से उसका कुछ भी बिगड़ नहीं सकता।... ईश्वर एक स्वतः सिद्ध सर्वमान्य वस्तु है। यह बात आधुनिक अन्वेषण, न्याय-सांख्य-वेदान्त-दर्शन, आस्तिक सिद्धान्तों तथा आस्तिक वादों से स्पष्ट सिद्ध है। धर्म एवं ईश्वर परम सत्य वस्तु हैं। इसीलिए सर्वकाल एवं सर्वदेश में इसकी मान्यता रही है।" (पृ. ७६३)

ईश्वर को माननेवाले धर्म और ईश्वर के नाम पर खून की नदियां हजारों वर्षों से बहा रहे हैं। इसका नमूना १९४७ के देश-विभाजन के समय भी देखा गया। यदि ईश्वर होता, तो लाखों निरीह मानवों के

निर्मम बध को रोकने के लिए जरूर ग्रा जाता। न्याय वेदान्त जरूर ईश्वर को मानते हैं, लेकिन कपिल के सांख्य को ईश्वरवादी कहना बिल्कुल सत्य का ग्रपलाप करना है।

करपात्री जी से पहले उदयनाचार्य ने ग्रपनी "कुसुमांजलि" में ईश्वर को सिद्ध करने के लिए बहुत सी युक्तियां दी हैं, जिनका खंडन इन पंक्तियों के लेखक ने "वैज्ञानिक भौतिकवाद" में किया है। वैसी ही कुछ उक्तियां देकर करपात्री जी कहते हैं कि जगत में व्यवस्था, सूर्य-चन्द्रादि उपकारी वस्तुग्रों के निर्माण, सूर्य-चन्द्र की विशेष गति ग्रौर पृथ्वी के धारण को देखने से पता लगता है कि इन बातों का कोई कर्त्ता है ग्रौर उसी का नाम ईश्वर है। जगत में व्यवस्था ग्रौर ग्रव्यवस्था दोनों हैं। परमाणु के भीतर विद्युत्कण कक्षा पर चलते हैं ग्रौर कभी भटक भी जाते हैं। इसका समाधान प्रकृति के परीक्षण से ही विज्ञान करता है। सूर्य ग्रौर चन्द्र तो निर्भ्रांत ऋषियों के मुताबिक देवता है, उनको पिंड या वस्तु कहना ऋषियों का ग्रपमान है। नीहारिका से सूर्य ग्रौर दूसरे पिंडों के निर्माण को विज्ञान बतलाता है। सूर्य-चन्द्र की गति को जानने के लिए भी किसी ईश्वर की जरूरत नहीं है। पृथ्वी तथा सारे ग्राकाशीय पिंड वेग ग्रौर ग्राकर्षण से धारित हैं। ऋषि लोग ईश्वर को भी पर्याप्त न समझ कर शेषनाग के ऊपर पृथ्वी की स्थिति बतलाते हैं। करपात्री महाराज, मानवता के लिए ग्रब बच्चों का युग बीत चुका है! उसको फिर लौटाने का प्रयत्न न कीजिए!

३. ग्रात्मा

बौद्ध ग्रनात्मवादी होने से ग्रात्मा को स्वीकार नहीं करते, पर बाकी सभी धर्म ग्रात्मा को नित्य वस्तु स्वीकार करते हैं। मार्क्सीय दर्शन भी किसी ग्रात्मा को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं है। वह भी बौद्धों के शब्दों में कह सकता है: "यत् सत् तत् क्षणिकं।" (जो सत वस्तु है, वह क्षण-क्षण बदलनेवाली है। जो क्षण-क्षण बदलनेवाली नहीं, वह सत् वस्तु ही नहीं है।) ग्रात्मा यदि क्षण-क्षण बदलनेवाली वस्तु

है, तो वह करपात्री जी की आत्मा नहीं हो सकती है, और अपरिवर्तनशील आत्मा को आजकल का विज्ञान, मार्क्सवाद और बौद्ध-दर्शन नहीं मान सकता। करपात्री महाराज कहते हैं :

"शरीरातिरिक्त आत्मा का अस्तित्व जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति की व्यावृत्ति एवं साक्षी की अनुवृत्ति आदि से सिद्ध होता है। आत्मा एवं परमेश्वर का निर्णय प्रामाणिक है, कल्पना नहीं।" (पृ. १३९)

शरीर से भिन्न आत्मा का अस्तित्व प्रयोग से कहीं सिद्ध नहीं होता। बिजली लगने से आदमी के हृदय की गति बन्द हो जाती है। इससे हजारों-लाखों लोग मरते देखे गये हैं। पर आज के चिकित्सा विज्ञान ने यह करके भी दिखला दिया है कि यदि हृदय की गति को फिर से चालित कर दिया जाय, तो आदमी में जीवन-संचार हो जाता है। वस्तुतः मरे हुए उस आदमी को निभ्रान्त ऋषियों के कथनानुसार यमराज के सामने उपस्थित होना चाहिए था। पर बिगड़ी हुई घड़ी के पुर्जों को ठीक कर देने की तरह वह अपनी जीवन-यात्रा यहां फिर शुरू कर देता है। बिजली के कारण हृदय की गति बन्द हुआ आदमी बिल्कुल मरा होता है, इसे चिकित्सा विज्ञान मानता है। डाक्टर परकाय प्रवेश करानेवाले नहीं होते कि वह किसी दूसरे की आत्मा को ले आकर उसमें डाल देते। जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्त अवस्था में वही जीवन-प्रवाह जारी रहता है जिसे करपात्री महाराज आत्मा कहना चाहते हैं। वस्तुतः मन से परे किसी आत्मा की सिद्धि नहीं होती। बौद्धों ने तो मन को ही चित्त और विज्ञान का नाम दिया है।

करपात्री महाराज आत्मा को मनवाकर पुनर्जन्म को भी गले लगाना चाहते हैं :

"स्प्रिचुअलिज्म (आधुनिक परलोकवाद) के पंडित जीव के अस्तित्व एवं उसके जन्मान्तर को भी स्वीकृत करते हैं।" (पृ. १४६)

करपात्री महाराज स्प्रिचुअलिज्म के अंग्रेजी शब्द को रखकर शायद यह धाक जमाना चाहते हैं कि यह भी एक विज्ञान है। योरप में भी ओझा-सोझा होते हैं। अगर जरूरत थी ही, तो उन्हें स्वदेशी ओझा विद्या का प्रमाण देना चाहिए था।

वह और भी कहते हैं :

"कोई नित्य आत्मा है, जो कि पूर्व-पूर्व के शुभाशुभ कर्मों के अनुसार उत्तरोत्तर जन्म ग्रहण करता है।"

थैलीशाहों की चोरबाजारी, सट्टेबाजी, घूस-रिश्वतखोरी आदि अनेक कुकर्मों से अर्जित थैली को सुन्दर आवरण से ढंकने के लिए यह कर्मवाद का सिद्धान्त गढ़ा गया है। लेकिन, इस कर्म को ढोने के लिए बौद्धों को किसी नित्य आत्मा को मानने की जरूरत नहीं पड़ी। करपात्री जी की आत्मा निष्कलंक निर्मल और नित्य है। ऐसी वस्तु पर शुभ-अशुभ कर्म का रंग कैसे चढ़ सकता है ? आत्मा यदि गतिशील, परिवर्तनशील वस्तु होती, तब भला कोई बात भी कही जा सकती थी !

"स्वप्न एवं स्मृति के आधार पर यही सिद्ध होता है कि देहादि संघात से भिन्न अभौतिक आत्मा ही द्रष्टा होता है, देहादि नहीं।" (पृ. ७०७)

द्रष्टा से काम नहीं चलेगा, आत्मा को भोक्ता भी कहिए महाराज ! फिर भोक्ता होने पर वेदान्तियों को लेने के देने पड़ेंगे, क्योंकि तब स्वप्न-माया समान भोक्ता कहने से काम नहीं चलेगा।

निर्भ्रान्त शास्त्रकर्ता ऋषियों में भी निरीश्वरवादी होते हैं, इसे करपात्री जी भी स्वीकार करते हैं :

"निरीश्वरवादी सांख्यों ने भी ... ईक्षण को गौण या औपचारिक ही माना है।" (पृ. ५५१)

: ६ :

मायावाद दर्शन

शंकर के वेदान्त को मायावाद कहा जाता है। शंकर एक ही ब्रह्म को वास्तविक तत्व मानते हैं। उसके अतिरिक्त सभी वस्तुओं, सारे जगत को माया समान मानते हैं। यद्यपि उपनिषदों में भी ब्रह्म को माना गया है, पर उपनिषदों की परस्पर विरोधी सी लगनेवाली बातों का समाधान करने के लिए ही बादरायण ने "ब्रह्मसूत्र" की रचना की। शंकराचार्य ने "ब्रह्मसूत्र" का भाष्य करके उसे मायावाद का समर्थक बनाना चाहा। पर ये सूत्र उनका साथ देने के लिए तैयार नहीं हैं। शंकर के अनुसार जीव ब्रह्म ही है। भेद माया से है। जीव स्वतः मुक्त है, इसलिए उसे मुक्ति की आवश्यकता नही। जीवन या मुक्ति दोनों में जीव ब्रह्म से अभिन्न है। पर बादरायण मुक्त जीव का मुक्ति-अवस्था में भी ब्रह्म से केवल भोग में साम्य (समानता) मानते हैं, और बातों में नहीं।

वस्तुतः शंकर का अद्वैतवाद बौद्ध विज्ञानवाद का ही एक विकृत रूप है। बौद्ध विज्ञानवादी सद्‌भूत तत्व को विज्ञान और साथ ही उसे क्षणिक मानते थे। इस प्रकार विज्ञान में हर वक्त वास्तविक परिवर्तन होने के कारण उन्हें माया या अध्यास मानने की आवश्यकता नहीं पड़ी। वह वीचि तरंग न्याय से अनन्त विज्ञान-समुद्र में हर वक्त उठती तरंगों के कारण जगत की उत्पत्ति मानते थे। शंकराचार्य के अनुयायी यह मानते हैं कि उनके दर्शन के महाप्रतिष्ठापक गौड़पाद हैं। यद्यपि शंकर कहीं भी यह स्वीकार नहीं करते कि बौद्ध विज्ञानवाद का उनके ऊपर ऋण है, पर गौड़पाद इसे स्पष्ट स्वीकार करते हैं :

ज्ञानेनाकाशकल्पेनर्धान यो गगनोपमान।
ज्ञेयाभिन्नेन सम्बुद्ध तं वन्दे द्विपदां वरं॥ —आगमशास्त्र ४।१

[ज्ञेय-से-अभिन्न, आकाश के समान विस्तृत ज्ञान से जिन्होंने गगनोपम धर्मों (संस्कृत तथा असंस्कृत धर्मों) का बोध प्राप्त किया, उन द्विपदों में श्रेष्ठ तथागत (बुद्ध) को मेरा नमस्कार है।]

अलब्धावरणाः सर्वे धर्माः प्रकृतिनिर्मलाः।
आदौ बुद्धास्तथा मुक्ता बुद्धयन्ते इति नायकाः॥

—आगमशास्त्र ४।९८

[जितने भी धर्म (चित्त-विषय, पदार्थ) हैं, वे सभी प्रकृति से निर्मल तथा कारण-रहित हैं। वे आदि से ही ज्ञान रूप (बुद्धा) हैं, वैसे ही निर्वाण (मोक्ष) में इस बात को बुद्ध (नायक) जानते हैं।]

गौड़पाद अपने **आगमशास्त्र** में बुद्ध का स्पष्ट उल्लेख करके उनकी प्रशंसा और उन्हें नमस्कार करते हैं। सिर्फ नमस्कार ही नहीं, बल्कि सिद्धान्त से भी वह बौद्ध विज्ञानवाद के अनुयायी मालूम होते हैं। उनके ग्रन्थ "माण्डूक्यकारिका" या "आगमशास्त्र" के चौथे परिच्छेद का नाम अलातशान्ति है। अलात बनेठी को कहते हैं, जिसमें गति स्थिर चक्र की भांति होती है। अलात उपमा भी क्षणिक विज्ञानवाद के ही अनुकूल है। इसे स्पष्ट करते हुए वह यह भी कहते हैं :

ऋजुवक्रादिकाभासं अलातं स्पन्दितं यथा।
ग्रहणग्राहकाभासं विज्ञानं स्पन्दितं यथा॥

—आगमशास्त्र ४।४७

[जिस प्रकार घुमाने पर बनेठी (अलात) सीधा या टेढ़ा आदि प्रतीत होता है, उसी प्रकार विज्ञान (चित्त) स्पन्दित होने पर ग्रहण (विषय) तथा (विषयों के) ग्राहक चित्त के रूप में प्रतीत होता है।]

चित्त या विज्ञान शंकरवेदान्त में कूटस्थ अचल नित्य है, पर गौड़पाद उसके बारे में कहते हैं :

चित्तस्पन्दितमेवेदं ग्राह्यग्राहकवद् द्वयं।
चित्तं निर्विषयं नित्यं असंगं तेन कीर्तितं॥

— आगमशास्त्र ४।७२

[यह जो ग्राह्य ग्राहक का द्विभाव है, यह केवल चित्त-स्पन्दन मात्र ही है। इसलिए चित्त को निर्विषय, नित्य तथा असंग कहा गया है।]

गौड़पाद शंकर के दादागुरु कहे जाते हैं। यद्यपि महामहोपाध्याय विधुशेखर भट्टाचार्य के अनुसंधान द्वारा पता लगता है कि गौड़पाद शंकर से इतने पहले हुए थे कि दोनों के बीच में सिर्फ एक गुरु पर्याप्त नहीं हो सकता। शंकर के मत को प्रच्छन्न बौद्ध कहा जाता है। इसमें बहुत तथ्य है। गौड़पाद को तो प्रच्छन्न बौद्ध भी नहीं कहा जा सकता, क्योंकि वह सिद्धान्त और सम्मान दोनों में बुद्ध का अनुसरण करते हैं। शंकर अपने को पूर्ण आस्तिक और वैदिक मार्गानुयायी दिखलाना चाहते हैं, इसलिए उन्होंने चित्त-स्पन्द और अलातवत् विज्ञान के भाव को हटाकर उसकी जगह नित्य विज्ञान की स्थापना की, जो उपनिषदों के ब्रह्म से एक हो गया। तो भी कितने ही मीमांसक उन्हें अर्धजरती विज्ञानवादी मानते हैं। रामानुजभाष्य की टीका श्रुतप्रकाशिका ने तो उन्हें बौद्धों के साथ यह साबित किया :

वेदोऽनृतो बुद्धकृतागमोऽनृतो, प्रामाण्यमेतस्य च तस्य चानृतम्।
बौद्धोऽनृतो बुद्धि-फले तथाऽनृते, यूयं च बौद्धाश्च समानसंसदः॥

[वेद मिथ्या है, बुद्धरचित आगम मिथ्या है। इस (वेद) का और उस आगम का प्रामाण्य मिथ्या है। ज्ञाता (आत्मा) मिथ्या है, ज्ञान और (उसका) फल (मुक्ति) मिथ्या है। (अतः) तुम (शंकर मतावलम्बी) और बौद्ध एक ही संसद्वाले हो।]

यहां रामानुजी विद्वान् ने बौद्ध विज्ञानवाद-शून्यवाद से शंकर मत की तुलना करके दोनों को एक सा बताया है। पर दोनों में भेद भी है। शंकर अपने परमगुरु गौड़पाद के अलात चक्रवत् स्पन्दनशील विज्ञान को बौद्ध-दर्शन का समझकर उसे छोड़ नित्य विज्ञानवादी बने। नित्य होने पर विज्ञान (ब्रह्म) अविकारी होगा, इसलिए उसमें परिवर्तन आकर संसार का निर्माण नहीं हो सकता, जैसा कि बौद्ध या हेगेल के दर्शन में हो सकता है। इसीलिए शंकर को माया का आश्रय लेना पड़ा। माया

भी यदि कोई वास्तविक तत्व हो, तो अद्वैतवाद खतम हो जायगा, इसलिए उसे उन्होंने अनिवर्चनीय कहा। पर अनिर्वचनीय कहने से काम नहीं चल सकता। यहां यह भी बतलाना पड़ेगा कि विश्व की मूलभूता जो माया है, वह वास्तविक है, या रस्सी में सांप जैसा भ्रम। शंकरवेदान्त से कश्मीर शैव-दर्शन इस बारे में अधिक बुद्धिपूर्ण है, क्योंकि वह अपने परमतत्व अद्वैत विज्ञान को स्पन्दनशील मानता है।

करपात्री जी के मान्य दर्शन के इतिहास पर थोड़ा प्रकाश डालकर अब हम उनके कथन को लेते हैं। वह कहते हैं :

"भारतीय दर्शनों में यद्यपि इतना अधिक वैरूप्य नहीं है, क्योंकि उनके मूल अनादि-पौरुषेय वेद, तदाधारित शास्त्र, योगज ऋतंभरा प्रज्ञा तथा लौकिक प्रत्यक्षानुमान हैं, तथापि यहां भी सभी विषयों में सभी ऋषियों का समान आदर नहीं है, अपितु जिस विषय में जिस ऋषि ने धारणा, ध्यान, समाधि आदि द्वारा तत्वानुभूति प्राप्त की है, उसी विषय में उसका सार्वभौम आदर्श है। जैसे शब्द के सम्बंध में पाणिनि, कात्यायन, पतंजलि आदि का, एवं वाक्य-विचार आदि में जैमिनि-व्यास आदि का।" (पृ. ३)

भारतीय दर्शनों में अत्यधिक वैरूप्य है, इसे करपात्री महाराज कम करने की कोशिश करते हैं। ब्राह्मणों के छः मान्य दर्शनों में भी तीन—सांख्य, वैशेषिक और मीमांसा—ईश्वर मानने से इनकार करते हैं। भारतीय दर्शनों को लेने पर तो अनीश्वरवादियों की संख्या और भी बढ़ जायगी। बौद्ध और जैन दर्शन अनादि, अपौरुषेय वेद तथा ईश्वर से साफ इनकार करते हैं। चार्वाक के बारे में तो कुछ पूछना ही नहीं। वह घोर भौतिकवादी हैं। ऋषियों में किसी का मत एक नहीं है। इसके लिए संस्कृत में प्रसिद्ध कहावत है : **"वेदाविभिन्नाः स्मृतयो विभिन्ना नैको मुनिर्यस्य वचः प्रमाणम्।"** समझ में नहीं आता कि यहां करपात्री महाराज को भारतीय दर्शनों को लपेटने की क्यों आवश्यकता पड़ी। जिस तरह आज करपात्री जी को विश्वनाथ मन्दिर में हरिजन प्रवेश के विरोधी और वर्णाश्रम धर्म के समर्थक मुट्ठी भर ही मिल सकते हैं, उससे बेहतर स्थिति पहले कभी नहीं थी।

फिर वह कहते हैं :

"भारतीय दर्शनों का अन्तिम उद्देश्य दुख-निवृत्ति, मृत्यु-विजय तथा मोक्ष-प्राप्ति है, अवान्तर उद्देश्य अर्थ-काम-धर्मार्जन भी है।" (पृ. ३)

चार्वाक दर्शन इसके बिलकुल विपरीत है। वह इसी संसार में सुख चाहता है और कल्पित मोक्ष-परलोकादि को पुरोहितों की आंख में धूल झोंकने की कोशिश मानता है। बौद्ध भी निर्वाण को दीपक के बुझ जाने जैसा मानते हैं। करपात्री महाराज का दर्शन दुख-निवारण करने के लिए है, लेकिन उसमें दासों, शूद्रों और स्त्रियों के दुख को दुख नहीं माना जाता।

महाराज उपनिषद् का वचन उद्धृत कर यह कहते है :

"**स्कोऽहं बहुस्याम्** : एक में अनेक होकर व्यक्त हो जाऊं।" यहां जहां तक उपनिषद् और ब्रह्मसूत्र का सम्बंध है, वे करपात्री जी की तरह ब्रह्म को निरीह और निष्क्रिय नहीं मानते, न ब्रह्म में जगत को भ्रान्ति मानते हैं। वहां तो वस्तुतः ब्रह्म ही जगत्-रूप में परिणत हो गया है।

पृष्ठ ५ पर आप फरमाते हैं :

"मीमासकों ने कहा है कि '**न कदाचिदनीदृशंजगत्,**' अर्थात यह जगत कभी भी ऐसा नहीं रहा, जैसा आज नहीं है, अर्थात वह सदा ऐसा ही रहा। सारी गतियां वाण की गति के समान भ्रमात्मिका ही हैं।"

इस भ्रममय जगत से करपात्री महाराज जो भी सिद्ध करना चाहेंगे, वह भ्रममय ही होगा। उन्हें तो विश्वनाथ मन्दिर में हरिजनों के प्रवेश को भी भ्रम ही समझ लेना चाहिए था। मालूम होता है कि उनका अपने महान गुरु शंकर के वचन पर विश्वास नहीं है : "न वर्णा न वर्णासमाचार धर्मा" (न वर्ण कुछ है और न वर्णाश्रम के धर्माचरण ही कोई चीज हैं)। जगत कभी एक सा नहीं रहा, उसमें हमेशा परिवर्तन होता है। लेकिन कार्य अपने कारण के सदृश होता है, इसलिए एकता की भ्रान्ति होती है।

जहां मतलब हो, वहां करपात्री जी वेद-शास्त्र सबकी दोहाई देंगे। लेकिन रहस्य यह है कि श्रुतप्रकाशिका के लेखक के कहे अनुसार शंकर

वेदान्तियों के लिए वेद भी मिथ्या ही है। उसी तरह प्रत्यक्ष अनुमान प्रमाणों की भी दुहाई करपात्री महाराज देना चाहते हैं। पर वह स्वयं अनुमान की अप्रामाणिकता के बारे में कहते हैं :

यत्नेनानुमितोऽप्यर्थः कुशलैरनुमातृभिः।
अभियुक्त तरैरन्यैरन्यथैवोपपाद्यते ॥

[अर्थात् कुशल अनुमाता लोग बड़े प्रयत्न से जिस अर्थ को तर्कसिद्ध करते हैं, उसी अर्थ को अन्य अनुमाता तार्किक अपने अनुमान तर्कों द्वारा अन्यथा सिद्ध कर देते हैं।"] (पृ. ७)

मार्क्सवाद और बहुत हद तक बौद्ध-दर्शन भी दिमागी वर्जिश करनेवाले अनुमान या तर्क को नहीं मानता। वे उसी अनुमान या प्रमाण को मान्य समझते हैं, जिसका समर्थन वस्तुएं करती हों। आचार्य धर्मकीर्ति ने इसलिए कहा है : "प्रमाणमभिसंवादि ज्ञानम्," अर्थात् प्रमाण वह है जो पदार्थों का अपलाप करनेवाला न हो। विज्ञान तर्कसिद्ध बात को मान्यता नहीं देता, बल्कि प्रयोगसिद्ध तथ्य को ही महाप्रामाणिक मानता है। प्रयोगशाला में एक वैज्ञानिक सैकड़ों बार परीक्षा करके किसी तथ्य का आविष्कार करता है, परन्तु वह तब तक प्रामाणिक सिद्धान्त नहीं माना जाता जब तक कि और जगहों के वैज्ञानिक भी प्रयोग करके उसे सिद्ध नहीं देखते। यही कारण है कि उनका सिद्धान्त तर्क या अनुमान के अधीन नहीं, बल्कि वस्तु के अधीन है। वस्तुएं ही अन्तिम प्रमाण हैं। इसीलिए धर्मकीर्ति ने कहा है :

यदिदं स्वयमर्थानां रोचते तत्र के वयम्।

[अगर वस्तुओं को यही पसन्द है, तो हम-आप दाल-भात में मूसरचन्द बननेवाले कौन हैं ?]

१. वेद प्रामाण्य

पुरोहित और धर्माचार्य हमेशा अक्ल के दुश्मन रहेंगे, क्योंकि उन्हें अपने हलवे-मांडे से मतलब है। यदि लोग अक्ल से काम लेंगे, तो उनका काम नहीं चलेगा। इसीलिए वे आंख मूंदकर वेद-शास्त्र और पुराण का

अनुसरण करने के लिए कहते हैं। जहां तक वेदों का सम्बंध है, बहुत ही कम धर्माचार्यों ने उनको समग्र रूप में देखा है। जिन्होंने देखा है, उनके लिए वेद की ऋचाएं लोहे के चने हैं। महाराज फरमाते हैं :

"वेद प्रामाण्यवादियों का कहना है कि जिस प्रयोग और विवेक के आधार पर वेदोक्त अर्थ का शौष्ठव एवं सत्यता सिद्ध की जाती है, उसी आधार पर वेदोक्त अर्थ का परिज्ञान भी सम्पादित किया जा सकता है।" (पृ. १४)

वेद की प्रामाणिकता का खंडन बौद्धों ने इतनी अच्छी तरह से किया है कि उसके लिए और अधिक प्रयास करने की जरूरत नहीं है। धर्मकीर्ति ने तो उसका खंडन कर वेद को प्रमाण मानने को अक्ल मारे हुओं की जड़ता के पांच लक्षणों में शामिल कर दिया है :

वेदप्रामाण्यं कस्यचित्कर्तृवादः स्नाने धर्मेच्छा जातिवादावलेपः।
संतापारंभः पापहानाय चेति ध्वस्तप्रज्ञानां पंचलिंगानि जाड्ये ॥

[अर्थात्, वेद (ग्रन्थ) की प्रमाणता, किसी (ईश्वर) का सृष्टि कर्तापन (कर्तृवाद), स्नान (करने) में धर्म (होने) की इच्छा, जातिवाद (छोटी-बड़ी जाति-पांत) का घमंड और पाप दूर करने के लिए शरीर को सन्ताप देना (उपवास तथा शारीरिक तपस्याएं करना)—ये पांच हैं अक्ल मारे लोगों की मूर्खता (जड़ता) की निशानियां।]

वेद को अपौरुषेय कहकर जैमिनि यह बतलाते हैं कि चूंकि सभी पुरुषों में अज्ञान या राग-द्वेष रहता है, इसलिए पुरुष की रचना को प्रमाण नहीं माना जा सकता। वेद पुरुषकृत नहीं हैं, क्योंकि उनके कर्ता को कोई बतला नहीं सकता। अपौरुषेय होने से वह निभ्रान्त है। धर्मकीर्ति ने लिखा है कि देहात में बहुत से गिरे-पड़े कुएं भी ऐसे मिलते हैं जिनके निर्माणकर्त्ता का पता नहीं है। पर उससे उनको अपौरुषेय नहीं कहा जा सकता। वस्तुतः ऋषि ही—भरद्वाज, वसिष्ठ, विश्वामित्र, वामदेव, आदि—वेद के कर्ता हैं। वेद की रचना के पांच-छ सौ वर्ष बाद के पालि सूत्रों में ऋषियों को मन्त्रों का कर्त्ता बतलाया गया है।

कोई वैज्ञानिक या मार्क्सवादी सर्वज्ञ होने का दावा नहीं करता। हां करपात्री महाराज अवश्य अपने कितने ही ऋषियों को सर्वज्ञ बताना चाहते हैं। उनका यह कहना आकाश में तीर मारने जैसा है :

"एक क्षुद्र भूखंड तथा ब्रह्माण्ड गोलक के भीतर का जन्तु सर्वज्ञ होने का दावा करे, यह साहस मात्र है। ...जड़वादियों की कल्पनाओं में भी परस्पर महान मतभेद हैं।" (पृ. १४१)

चार्वाक और मार्क्स पर आक्षेप करते हुए वह कहते हैं :

"चार्वाक एवं उसके अनुयायी मार्क्स आदि भौतिकवादी प्रत्यक्ष प्रमाण के अतिरिक्त काई प्रमाण नहीं मानते। ..." (पृ. २१६)

प्रत्यक्ष प्रमाण प्रयोगसिद्ध है, इसीलिए चार्वाक और उसके अनुयायी मार्क्स ही नहीं, बल्कि बौद्ध विद्वान भी प्रत्यक्ष को ही प्रमाण मानते हैं। अनुमान को वे उसी अंश में प्रमाण मानते हैं जिसमें कि प्रत्यक्ष उसका समर्थन करता है।

"किसी भी साध्य की सिद्धि के लिए प्रमाण अपेक्षित है।"

(पृ. २३३)

लेकिन मायावादी के पास क्या प्रमाण है, जब कि वह सारे जगत और उसकी हरेक वस्तु को ही मिथ्या बताता है। वैज्ञानिक कम से कम प्रयोग या प्रत्यक्ष को तो प्रमाण मानते हैं।

२. करपात्री जी के कुछ तर्क

जैसा कि ऊपर बतलाया गया है, अद्वैत वेदान्ती के लिए तर्क करने का कोई साधन या अवसर नहीं है, क्योंकि वे तर्क के आधार पर जगत को ही मिथ्या कहते हैं। मार्क्सवादियों का कहना है कि वेदान्तवादी अपने सिद्धान्त का उसी वक्त खंडन कर देते हैं, जब वे रोटी की तरफ हाथ बढ़ाते हैं, या चारपाई पर लेटते हैं, क्योंकि ये दोनों चीजें उनके मतानुसार आकाशकुसुम सी नितान्त मिथ्या बातें हैं।

जगत को मिथ्या माननेवाले करपात्री जी सांख्य के सत्कार्यवाद का जबर्दस्त समर्थन करते हैं, जिसके अनुसार "कारण-सामग्री, आवरण...

आदि हटाकर कार्य को व्यक्त कर देती है। जैसे तिल से तैल, दुग्ध से नवनीत, तन्तु से पट आदि। बालू से तेल, आकाश से तन्तु या पट का साक्षात विकास कभी भी सम्भव नहीं।...वेद और गीता इसी तरह सृष्टि का पुनः-पुनः प्रादुर्भाव मानते हैं: '**सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत्**।' पूर्व सृष्टि के समान ही विधाता उत्तरोत्तर सृष्टि में सूर्य-चन्द्रादिका विधान करते हैं।" (पृ. २३६-३७)

सांख्य का मत है कि मूर्ति संगमर्मर में मौजूद थी, मूर्तिकार केवल उसके आवरण अतिरिक्त पत्थर को हटा देता है और वह निकल आती है। इसी तरह सारी सृष्टि बन रही है। करपात्री जी तो वस्तुतः बालू से ही तेल निकालने के माननेवाले हैं, क्योंकि ब्रह्म में मिथ्या कल्पित जगत् बालू के तेल जैसा ही है। बौद्ध दार्शनिक सांख्य के सत्कार्यवाद के उत्तर में असत्कार्यवाद को मानते हैं। मार्क्स भी इस विषय में बौद्धों के साथ हैं। कारण से कार्य बिलकुल ही अलग वस्तु है। दोनों का सम्बंध यही है कि कारण अपने कार्य से तुरन्त पूर्व में था। क्षणभंगुर होने से कारण (कारण-प्रवाह) नष्ट हो गया और उसकी जगह कार्य-प्रवाह आ गया। कार्य हमेशा अपने कारण के सदृश होता है, इसीलिए एकता की भ्रान्ति होती है। यह सभी मानते हैं कि कारण में या कारणों में जिस चीज के बनाने की सामर्थ्य होती है, वही उनसे बनती है। बरगद के बीज में बरगद के वृक्ष को उत्पन्न करने की शक्ति है और वह नष्ट होकर उसे उत्पन्न करता है। पर इसका यह अर्थ लगाना कि राई भर के बीज में विशाल बरगद वृक्ष मौजूद था, निरा उपहासास्पद है।

महाराज फरमाते हैं:

"अचेतन चेतन नहीं बन सकता।" (पृ. २४१)

यदि अचेतन चेतन नहीं बन सकता, तो चेतन अचेतन कैसे बन जाता है? कैसे अखंड बोधस्वरूप ब्रह्म जगत बन गया? यदि कहा जाय कि मिथ्या कल्पना से, तो फिर यह वाग्जाल बन जायेगा।

इतिहास और धरती के भीतर से मिली ऐतिहासिक सामग्री के आधार पर अनेक वैज्ञानिक सिद्धान्त निरूपित किये गये हैं। उसके बारे में करपात्री जी कहते हैं:

"इतिहास स्वयं किसी सिद्धांत का साधक या बाधक नहीं होता।"

वह फिर कहते हैं :

"गणित तथा पदार्थ विज्ञान में बहुत से सिद्धान्त ऐसे हैं, जो परस्पर विरोधी हैं।" (पृ. ५१६)

विज्ञान प्रयोगसिद्ध बातों को ही सिद्धान्त मानता है। जो प्रयोग द्वारा सर्वत्र सिद्ध होता है, उसी को वह मानता है। परस्पर विरोधी बातों को वह सिद्धान्त नहीं मान सकता।

लेकिन करपात्री महाराज तो विज्ञान से उसी तरह डरते हैं, जैसे लाल कपड़े से मरखाहा बैल। इसीलिए वह फरमाते हैं :

"यथाभूत वस्तु ही सत्य कहलाती है। उसको अयथाभूत जानना भ्रान्ति है। ... ऋतंभरा प्रज्ञा द्वारा होनेवाले परमार्थ सत्य ज्ञान का अपलाप नहीं किया जा सकता। ...प्रमाण, युक्ति, तर्कविहीन विज्ञान विज्ञान ही नहीं, वह है निरा अज्ञान और निरा अभिमान।" (पृ. ५६५)

मायावादी को जगत की झूठी वस्तुओं से क्या लेना-देना है। लेकिन ऋतंभरा प्रज्ञा के धनी भी इस बारे में एकमत नहीं हैं :

"वेदा विभिन्नाः स्मृतयो विभिन्नाः नैको मुनिर्यस्य वचः प्रमाणम्।"

३. मायावाद

यद्यपि जगत, तीन काल में असत्य है, अभूत है, मिथ्या और कल्पित है—यही करपात्री महाराज के वेदान्त की मान्यता है—फिर भी वह कहते हैं :

"वस्तुतः सत्यता का निर्णायक प्रमाण ही होता है, क्योंकि प्रमा के कारण को प्रमाण कहते हैं, और अज्ञात, अबाधित, असंदिग्ध विषयक ज्ञान ही प्रमा शब्द से कहा जाता है। उस प्रमा के कारण को ही प्रमाण कहा जाता है। (पृ. १६)

प्रमा (यथार्थ ज्ञान) और उसका कारण प्रमाण कूटस्थ अद्वैतवाद में कभी हो ही नहीं सकता, क्योंकि उसके लिए जितने जगत के उपकरण हैं, सभी मायावाद में पूरी तरह से मिथ्या हैं।

इसी प्रकार यह फरमाना भी यथार्थ के अत्यन्त विरुद्ध है :

"वेदान्त मतानुसार विनाश या विध्वंस को अंकुर का कारण नहीं माना जाता, किन्तु बीज के अवयव ही अंकुर के रूप में परिणत या विवर्तित होते हैं। ... कई कार्यों के विनाश से कोई भी अच्छी चीज उत्पन्न नहीं होती। ... वस्तुतः मार्क्स ने हेगेल के द्वन्द्वमान का गलत अभिप्राय समझ कर उपयोग किया है।" (पृ. ३१)

वेदान्त (शंकर) के सिद्धान्त के अनुसार विनाश या विध्वंस कोई चीज ही नहीं है, क्योंकि जगत ही उनके लिए शशश्रृंग, आकाशकुसुम जैसा मिथ्या है। हेगेल का सिद्धान्त उनसे बहुत दूर है, क्योंकि हेगेल विज्ञान को क्षण-क्षण परिवर्तनशील मानता है, उसी तरह, जैसे कि योगाचार बौद्ध। स्वयं विज्ञान को विकारी होने में उनको आपत्ति नहीं है, इसलिए बौद्ध जगत को विज्ञान का ही परिणाम मानते हैं। उनको मायावाद की आवश्यकता नहीं है। बौद्ध विनाश या विध्वंस को अंकुर का कारण नहीं मानते, बल्कि जो वस्तुएं विध्वंस या विनष्ट हुई, वे ही "अन्यथासिद्धि शून्य कार्याव्यवहित पूर्वक्षणवर्ती" होने से कारण हैं। विनाश अभाव होने के कारण उसके लिए किसी कारण की आवश्यकता नहीं है। हर वस्तु अपने सिर से कफन बांधकर, यानी विनाश को साथ लेकर जन्मती है : उसे विनाश के लिए किसी कारण की आवश्यकता नहीं है। वस्तुतः जिसको अग्नि द्वारा काष्ट का विनाश कहते हैं, वह ठीक नहीं है। अग्नि द्वारा कोयला या राख की उत्पत्ति होती है, जो कि भाव पदार्थ है। मार्क्स ने हेगेल को नहीं समझा, और उसे करपात्री महाराज समझते हैं, ऐसा कहना घमंड करना है।

मायावादी का यह कहना भी प्रलाप मात्र है :

"वेदान्तियों का ब्रह्म, सांख्यों की प्रकृति अनन्त प्रपंच का भंडार है। उसमें शक्ति रूप से सभी वस्तुएं रहती हैं।" (पृ. १३१)

दोनों के ब्रह्म और प्रकृति में जमीन-आसमान का अन्तर है। ब्रह्म नित्य बोध रूप है। उसमें विकार कभी हो ही नहीं सकता, इसलिए जगत की वस्तुओं में शक्ति (सामर्थ्य) रूप से हो ही नहीं सकती। ब्रह्म उसमें नहीं हो सकता, क्योंकि भ्रम बोध स्वरूप वस्तु में असम्भव है,

और भ्रम के लिए द्वैत की आवश्यकता है। सांख्यों की प्रकृति में अवश्य कार्य-उत्पादन की शक्ति है, क्योंकि वह परिवर्तनशील है। उनका दोष यही है कि उन्होंने नित्य चेतन पुरुष को मान लिया, जो निष्क्रिय होने से अन्यथा सिद्ध है, अतएव कारण नहीं हो सकता। कारण में कार्य पूरी तौर से मौजूद रहता है, उनका यह सत्कार्यवाद भी गलत है। धर्मकीर्ति ने ठीक ही कहा है :

अदृष्टपूर्वमस्तीति तृणाग्रे, करिणां शतम्।

यानी तिनके की नोक पर कभी नहीं देखे गये सौ हाथी के समान ही कारण में कार्य की सत्ता को स्वीकार करना है। हां, कारण में कार्य उत्पादन करने की क्षमता (शक्ति) है, इसे मानने में किसी को आपत्ति नहीं हो सकती।

करपात्री जी का वेदान्त प्रमाण के सारे साधनों को मिथ्या मानने वाला होने के कारण किसी चीज़ की स्थापना नहीं कर सकता। तब भी महाराज फरमाते हैं :

"अद्वैतवादी वेदान्ती यद्यपि ब्रह्मातिरिक्त सभी वस्तुओं का पारमार्थिक बाध करते हैं, तथापि स्वपक्ष-साधन, परपक्ष बाधनार्थ व्यावहारिक प्रमाण-प्रमेयादि सभी व्यवस्था मानते हैं।" (पृ. ३००)

उपरोक्त सिद्धान्त के आधार पर अपने पक्ष का समर्थन और दूसरे मत का खंडन करना ठीक वही बात है, जिसके बारे में धर्मकीर्ति ने कहा है : कोई स्त्री व्यभिचार के समय पकड़ी गयी। भर्त्सना करने पर कहने लगी कि देखो यह मेरा मुआ पति मेरी जैसी साध्वी स्त्री के वचन पर विश्वास नहीं करता, उसकी जगह अपनी आंख के दोनों बुलबुलों को मानता है।

आगे करपात्री महाराज यह जरूर कहते हैं :

"चित्त की एकाग्रता रूपी योग से उद्भूत सामर्थ्ययुक्त ऋतंभरा प्रज्ञा द्वारा तथा अपौरुषेय आगम द्वारा आत्मा-परमात्मा पर दृढ़ निर्णय होता है।" (पृ. ३२७)

यह अवश्य अन्धेरे में काली बिल्ली पकड़ने का प्रयत्न है। लेकिन आज का विज्ञान न करपात्री महाराज की ऋतंभरा प्रज्ञा पर अक्ल

बेच खाने के लिए तैयार है, और न अपौरुषेय वेद पर। वेद पौरुषेय है और ईसा-पूर्व ११वीं-१२वीं शताब्दी के आर्यों के इतिहास, भूगोल, सामाजिक, आर्थिक व्यवहार जानने के लिए बहुत अनमोल निधि है, इसे सभी विद्वान मानते हैं। अपौरुषेय होने पर उसका यह महत्व खतम हो जाता है।

उपनिषद् में कितने ही स्थानों पर अद्वैत का भ्रम होता है, यद्यपि आत्मा या ब्रह्म के अद्वैत से वहां जगत की वस्तुओं के अस्तित्व को मानने से इनकार नहीं है। यह भाव वेदान्त-सूत्रों में भी दिखाई देता है, तभी तो मुक्त हो जाने पर भी जीवात्मा परमात्मा नहीं बन जाता, बल्कि वह भोग में परमात्मा की समानता रखता है—**"भोगमात्र साम्य लिंगात्।"** वहां जगत को शरीर और ब्रह्म को शरीरी या शारीरिक रूप में माना गया है। बृहदारण्यक के अन्तर्यामी ब्राह्मण (३।७।४) का यही अभिप्राय है :

यांप्सु तिष्ठन् ... अप्तरोयमयति।

इस विषय में रामानुज का मत उपनिषद् के ज्यादा अनुकूल है।

ब्रह्म के अतिरिक्त ईश्वर, प्रकृति आदि को न माननेवाले मायावादी का यह कहना बेकार है :

"सभी घटनाओं का मूल ईश्वर चेतनाधिष्ठित प्रकृति है।... प्रकृति क्षण परिणामशील या गतिशील है।"

जो स्वतः गतिशील है, उसमें गति लाने के लिए किसी की आवश्यकता ही नहीं, और गतिहीन ब्रह्म या ईश्वर चेतना में गति लाने की शक्ति कहां से आयी? वस्तुतः जो ब्रह्म वाणी और मन से जाना नहीं जा सकता, इन्द्रियां जहां तक पहुंच नहीं सकतीं, उस जैसे अदृश्य वस्तु का क्रियाओं से ही अनुमान हो सकता था। लेकिन ब्रह्म निष्क्रिय है। ऐसे तत्व को केवल श्रद्धा से ही माना जा सकता है। लक्षण-प्रमाण से उसकी सिद्धि कभी नहीं हो सकती।

अविद्या, अज्ञान अभावरूप है। अभाव से भाव पैदा नहीं हो सकता, इसे करपात्री महाराज अपने ग्रंथ में कई बार दोहरा चुके हैं। जब जगत का अस्तित्व ही नहीं, तो यह कैसे कहा जा सकता है : "ब्रह्म में अविद्या

का आवरण प्रमाणसिद्ध है, अतः एक ही संवित् (विज्ञान) अनादि है।" (पृ. ६२५)

"अविद्या विशिष्ट ही आत्मा स्मर्ता है।" (पृ. ६२७)

आत्मा अर्थात् ब्रह्म के अतिरिक्त कोई पदार्थ ही नहीं है। वह निष्क्रिय होने से स्मरण भी नहीं कर सकता, क्योंकि स्मृति मानसिक क्रिया है। उसका अविद्या-अभाव से युक्त होना बोध रूप होने के कारण असम्भव है। यदि प्रकाश अन्धकार से विशिष्ट हो जाय, तो उसे कौन प्रकाश मानेगा।

भ्रम, माया, अविद्या से मायावादी अपना काम बनाना चाहते हैं।

"वेदान्त मतानुसार सर्वगत चिदात्मा को आवृत करके स्थित भावरूप अविद्या ही संपूर्ण जगत् के आकार से स्थित होती है।" (पृ. ६२९)

जब सर्व जगत है ही नहीं, तो चिदात्मा या ब्रह्म को सर्वगत नहीं माना जा सकता। अविद्या यदि भावरूप है, तो ब्रह्म के अतिरिक्त एक और तत्व को मानने पर अद्वैत सिद्धान्त गलत हो जायगा। वेदान्त वस्तुतः श्रद्धा की वस्तु है, उसे प्रमाण-तर्क से सिद्ध नहीं किया जा सकता। इसलिए यह भी कहना गलत होगा :

"अखंड बोधस्वरूप ब्रह्म ही अहंवृत्ति से युक्त होकर कर्ता कहलाता है, इदंवृत्तियुक्त हो प्रपंचाकार प्रतीत होता है, वही आन्तर्बाह्य सभी विषयों को साक्षी रूप से प्रकाशित करता है।" (पृ. ६९२)

और यह भी :

"अद्वैत वेदान्त की दृष्टि से परमेश्वर सर्वप्रपंच का उपादानकारण है, अतएव वह सर्वशक्तिमान है।" (पृ. ७७८)

अद्वैत तत्व का संगत होना तभी कुछ दूर तक सम्भव था, जब कि उसे परिवर्तनशील गतिशील माना जाता। लेकिन, शंकर का वेदान्त इसे नहीं मानता।

"जिसमें वास्तविक विभाजन (विकार) होता है, वह ब्रह्म नहीं होता।" (पृ. ७८२)

४. अध्यास, माया

अद्वैत निष्क्रिय नित्य ब्रह्म में जगत का प्रत्याख्यान होता है। जगत की सत्ता माने बिना कोई प्रमाण नहीं, इसलिए किसी चीज को सिद्ध नहीं किया जा सकता।

इस बारे में मायावादी कहते हैं :

"अनिर्वचनीय माया के अध्यास से ही उसमें अनेक प्रकार के विभागों का अध्यारोप होता है।... अद्वैतवादी शंकर ने तो गौड़पाद के ही मतानुसार प्रस्थानत्रयी पर भाष्य किया है।" (पृ. ७८२)

माया का अर्थ भी भ्रम है, अध्यास और अध्यारोप का भी वही अर्थ है। रस्सी में सांप के भ्रम जैसा जगत होने से उसमें किसी प्रकार के विभाजन की कल्पना व्यर्थ है। माया को अनिर्वचनीय — जिसके बारे में कुछ कहा न जाय — कहने से उसकी सिद्धि नहीं होती। विज्ञानवाद की सबसे ज्यादा पुष्ट मान्यता यह थी कि ज्ञान गतिशील और परिवर्तनशील होता है। बौद्ध विज्ञानवाद और हेगेल के विज्ञानवाद दोनों ही इसे मानते हैं। गौड़पाद इसके महत्व को समझते थे, इसीलिए **आगमशास्त्र** में उन्होंने विज्ञान की बनेठी की तरह की गति या स्पन्दन को स्वीकार किया है। शंकर ने दूसरे के असगुन के लिए अपनी नाक ही कटवा ली, विज्ञानवाद का जो सबसे प्रौढ़ अंश था उसे ही खतम कर दिया। प्रस्थानत्रयी अर्थात उपनिषद, वेदान्तसूत्र और गीता के भाष्यों द्वारा शंकर ने अपने मत का समर्थन किया। पर ये तीनों ही मायावाद, अध्यासवाद, रज्जु-सर्पवाद का समर्थन नहीं करते।

करपात्री महाराज ने जब स्वयं आंखें मूंदकर दूसरे मुंदी हुई आंख वाले की उंगली पकड़ ली, तो "अन्धे नैव नीयमाना यथान्धाः" की उक्ति चरितार्थ होनी चाहिए :

"आत्मा नित्य अखंड बोधरूप है। उसमें ही अनात्मा का अध्यास एवं तन्मूलक ही भ्रमात्मक बन्धन होता है।" (पृ. ६१८)

आत्मा यानी ब्रह्म नित्य है, अर्थात उसमें कभी परिवर्तन नहीं होता। आत्मा अखंड है, अर्थात उसको विभक्त नहीं किया जा सकता। आत्मा

बोध रूप है, अर्थात उसमें तीनों काल में कभी अज्ञान, अविद्या या माया टिक नहीं सकती। अध्यास भ्रम को कहते हैं। भला बोध रूप आत्मा में अनात्मा का अध्यास कैसे हो सकता है? और उसी अध्यास के कारण भ्रमरूपी बन्धन कैसे हो सकता है?

आप ही फिर कहते हैं:

"जैसे रज्जु में सर्प का अध्यास होता है, वैसे ही चैतन्य में प्रपंच का अध्यास। अतः अधिष्ठान चैतन्य में प्रपंच अध्यस्त है। उसी चैतन्य से प्रपंच का प्रकाश होता है। ... वेदान्त मत में आवरण-विनाश ही मोक्ष है।" (पृ. ६३०–३१)

चैतन्य बोध रूप है, उसमें प्रपंच या जगत का भ्रम कैसे हो सकता है? भ्रम का अधिष्ठान यदि चैतन्य है, तो वह अच्छा बोध रूप हुआ! प्रपंच यानी जगत अध्यस्त नहीं है, बल्कि वह वास्तविक है। अगर अध्यास कोई है, तो वह प्रपंच में ब्रह्म ही हो सकता है। वन्ध्यापुत्र से माने गये प्रपंच (जगत) को किसी चैतन्य से प्रकाश की आवश्यकता नहीं। यदि नित्य बोधरूप ब्रह्म में अज्ञान का आवरण हो सकता है, तो ऐसे आवरण का न कभी विनाश हो सकता है, और न किसी को मोक्ष ही मिल सकती है।

जगत को माया और तीनों काल में कभी भी अस्तित्व न रखनेवाला मानते हुए वह गौड़पाद के इस श्लोक का उद्धरण हैं:

आदावन्ते च यन्नास्ति वर्तमानेपि तत्तथा।

[अर्थात, जो न आदि में था, न अन्त में रहेगा, वह वर्तमान में भी वैसा ही, अर्थात अस्तित्वहीन है।]

जगत क्षण परिणामी है, इसका मतलब तुच्छ वन्ध्या-पुत्र सा नहीं है। क्षण-क्षण परिवर्तनशील होते भी वह देश-काल, सम्बंध, धर्म (गुण) युक्त स्थिति रखनेवाला है, इसलिए इसका उस देश, काल, सम्बंध, धर्म से अभाव सम्भव नहीं। इसे महाराज स्वयं भी फरमाते हैं:

"यस्य यद्देशावच्छिन्नयत्कालावच्छिन्नयत्सम्बन्धावच्छिन्नयद्धर्मावच्छिन्नयदधिकरणता यत्र, तत्र तस्य तद्देशावच्छिन्नतत्कालावच्छिन्नतत्सम्बंधावच्छिन्नतद्धर्मावच्छिन्नतदत्यन्ताभावो न सम्भवति।" (पृ. ५०५)

: ७ :

बौद्ध दर्शन, मार्क्सीय दर्शन

बौद्ध दर्शन उसी तरह मार्क्सीय दर्शन को समझने के लिए प्रथम सीढ़ी है, जैसे पश्चिम में उसके लिए हेगेलीय दर्शन। हेगेल विज्ञान युग में पैदा हुए थे और योगाचार दर्शन उस समय पैदा हुआ था जब आधुनिक विज्ञान को अस्तित्व में आने में १४ शताब्दियों की देर थी। करपात्री महाराज ने बौद्ध-दर्शन का नाम सुनकर ही उसका खंडन शुरू कर दिया। उनको शायद यह मालूम नहीं कि मायावाद या शंकरमत गौड़पाद द्वारा बौद्ध-दर्शन से ही लिया गया। बौद्ध दर्शन में आत्मा के लिए कोई स्थान नहीं है। वस्तुतः उपनिषद की आत्मा की दुहाई देकर जो अज्ञान दर्शन के रूप में फैला हुआ था, उसी के विरुद्ध आवाज उठाते हुए बुद्ध ने अनात्मवाद की घोषणा की : "**सब्बं अनिच्चं, सब्बं दुक्खं, सब्बं अनत्ता**" —यानी सब अनित्य, सब दुख, सब अनात्मा है। पर करपात्री महाराज फरमाते हैं :

"बौद्ध भले ही वैदिक धर्म के विरोधी हों, फिर भी उनके यहां आत्मा ... मान्य है।" (पृ. ७८३)

महाराज को अपने पक्ष के समर्थन में इतना अन्धा नहीं हो जाना चाहिए कि विरोधी के मुंह में अपनी बात डालकर उमसे अपने पक्ष का समर्थन करायें।

१. क्षणिकवाद

अनित्यवाद या क्षणिकवाद बौद्ध दर्शन का मूलभूत सिद्धान्त है। बौद्ध दार्शनिक कहते हैं :

यत् सत् तत् क्षणिकं यथा जलधरः
सन्तश्च भावा इमे। —ज्ञानश्री मित्र, क्षणभंगसिद्धि

[अर्थात, बादलों की तरह जो सदवस्तु है, वह क्षणिक है। जगत के ये पदार्थ (भाव) सत् हैं, इसलिए क्षणिक हैं।]

यह उल्लेख हो चुका है कि एकता की भ्रान्ति सादृश्य के कारण होती है। इस वक्त दिखाई देती दीप की लौ पहलेवाली जैसी है, इसीलिए यह वही दीपकलिका है, ऐसा कहा जाता है।

सत्, यानी वास्तविक पदार्थ क्या है, इस बारे में बौद्ध कहते हैं :

अर्थक्रिया समर्थं यत् तदत्र परमार्थ सत्।

—धर्मकीर्ति : प्रमाणवार्तिक

जो वस्तु अर्थक्रिया—वास्तविक क्रिया—में समर्थ है, वही परमार्थ सत् है। स्वप्न का लड्डू अर्थक्रिया—भूख-निवारण—में समर्थ नहीं है, इसलिए वह सत् नहीं है। जागृत का लड्डू अर्थक्रिया समर्थ है, इसीलिए वह परमार्थ सत् है। अर्थक्रिया समर्थ होने का मतलब है प्रयोग द्वारा सिद्ध होना। परमार्थ सत् के इस लक्षण को आजकल का विज्ञान भी मानता है। पर मायावाद को तो माया फैलाकर लड्डू खाना है!

२. सत्कार्यवाद गलत है

सांख्यशास्त्र सत्कार्यवाद को मानता है, जिसका उल्लेख हो चुका है, और जिसकी दुहाई हर जगह करपात्री महाराज देते हैं। तो भी वह स्वीकार करते हैं :

"सांख्यवादी सत्कार्यवादी होते हुए भी अचेतन प्रकृति को ही कारण कहते हैं, परन्तु वेदान्ती चेतन ब्रह्म को कारण कहते हैं। जो उत्पत्ति के पहले जिस रूप में होता है, वह उसीसे उत्पन्न होता है। ... अतः उत्पत्ति के पहले का कार्य कारणरूप ही रहता है। उत्पत्ति के पश्चात भी कार्य कारण से अभिन्न ही रहता है।" (पृ. ४६६–७०)

कारण की कार्य उत्पादन करने की क्षमता को उसका कार्यरूप मानना गलत है, यह हम बतला चुके हैं। बरगद के बीज में विशालकाय

बटवृक्ष का अस्तित्व मानना वैसा ही है, जैसे तिनके की नोक पर अदृष्ट सैकड़ों हाथियों का मानना। इसलिए यह कहना अयुक्त है :

"उत्पत्ति के पहले कार्य भी सत् ही रहता है" (पृ. ४७८)

बौद्ध विनाश (अभाव) कारणवाद को नहीं मानते, बल्कि जो है, सब विनाशशील है, इसको मानते हैं। कारण सद्वस्तुएं हो सकती हैं, अभाव नहीं हो सकता। वेदान्त के एक कारणवाद को बौद्ध नहीं मानते, बल्कि कारण सामग्री—अनेक कारणों के एकत्रित होने—को वे कार्य की उत्पत्ति का कारण मानते हैं। यह विचार मार्क्सवाद के "परिमाण द्वारा गुण परिवर्तन" सिद्धान्त के बहुत अनुकूल है। इसी की वजह से कारण कार्य से स्वरूपतः बिल्कुल भिन्न है, यद्यपि सादृश्य के कारण उसमें एकता मालूम होती है।

बौद्ध-दर्शन के अल्प ज्ञान का परिचय देते हुए करपात्री महाराज फिर कहते हैं :

"बौद्ध लोग ... चार आर्य सत्य मानते हैं। उनका ईश्वर सुगत और विश्व क्षणिक है।" (पृ. ७१५)

जिस तरह उन्होंने बौद्धों के मत्थे आत्मा की मान्यता को थोपना चाहा, वैसे ही यहां ईश्वर को भी वह थोपना चाहते हैं। इसे पहले ही बतलाया जा चुका है कि बौद्धों के सर्वश्रेष्ठ विचारक धर्मकीर्ति ईश्वर विश्वास को ध्वस्त प्रज्ञों की जड़ता के पांच लक्षणों में से एक मानते हैं। हां, वह दुख, उसके कारण, उसके विनाश और उसकी तरफ ले जानेवाले मार्ग, इन चार सत्यों को मानते हैं। इन चार आर्य सत्यों को इस रूप में मार्क्सवादी भी मान सकते हैं : दुनिया में दुख देखा जाता है, इसका कारण शोषण है; शोषण को हटाने अर्थात साम्यवाद के पथ का अनुसरण करने पर दुख नष्ट हो जायगा। इस दुख के विनाश का मार्ग साम्यवाद है। विश्व को बुद्ध और मार्क्स दोनों ही क्षणिक (सदा परिवर्तनशील) मानते हैं।

३. विज्ञानवाद

बौद्ध दर्शन चार सम्प्रदायों में विभक्त है, जिनमें एक योगाचार दर्शन है, जो संसार के मूल कारण को विज्ञान का नाम देता है। ठीक वैसे ही जैसे हेगेल अपने मत में इसे स्वीकार करते हैं। योगाचार के संस्थापक पेशावर के पठानों में पैदा हुए असंग माने जाते हैं, जिनका समय ईसा की चौथी सदी का मध्य है। कुछ विद्वान असंग से पहले मैत्रेय को उसी तरह प्रारम्भक मानते हैं, जैसे शंकर के वेदान्त के प्रारम्भक उनके पूर्वज गौड़पाद को। पुराने बौद्ध दर्शन में रूप (भौतिक तत्व) और विज्ञान दोनों माने जाते थे। हां, दोनों ही क्षणिक थे। जान पड़ता है कि मैत्रेय या असंग किसी तरह प्लातोन के विज्ञानवाद के सम्पर्क में आये। असंग का गन्धार देश ग्रीक संस्कृति के घनिष्ठ सम्पर्क में शताब्दियों रहा। यह बात वहां की ग्रीक-गन्धार कला से भी सिद्ध है। जो भी हो, असंग ने प्लातोन के अद्वैत विज्ञान-तत्व को स्वीकार कर उसमें बौद्ध दर्शन के क्षणिकवाद को मिला दिया। इस प्रकार क्षणिक विज्ञानवाद दर्शन का प्रादुर्भाव हुआ, जिसे गौड़पाद द्वारा पाकर शंकर ने फिर उलट दिया।

विज्ञान को बौद्ध किसी ब्रह्म या ईश्वर से मिलाने के विरुद्ध हैं। वह तो यही कहते हैं कि स्थूल जगत जिस सूक्ष्मतम तत्व से विकसित हुआ है, उसमें भौतिकता नहीं पायी जाती। वह विज्ञान एक अथाह-अपार समुद्र की तरह है, जो हर समय चंचल परिणामशील है। जैसे समुद्र में हलचल होकर तरंगें उत्पन्न होती रहती हैं, उसी तरह विज्ञान समुद्र मे जगत की उत्पत्ति है। वह जगत का विज्ञान में अध्यास या अध्यारोप नहीं मानते, उसे रस्सी से सांप के भ्रम जैसा नहीं मानते। उनको यह डर नहीं है कि विज्ञान यदि विकारवान हो जायगा, निर्विकार नहीं रहेगा, तो वह ब्रह्म या आत्मा नहीं हो सकता। बौद्धों को ब्रह्म या आत्मा से कुछ लेना-देना नहीं है, क्योंकि वे अनात्मवादी-अनीश्वरवादी हैं।

बौद्ध दर्शन को बिना समझे उस पर आक्षेप करते हुए करपात्री महाराज पृष्ठ ६६६ पर कहते हैं :

"बौद्ध क्षणिक ज्ञान को ही आत्मा कहते हैं। ... अनुभविता भी यदि क्षणिक ज्ञान है, तब स्मृति भी कैसे सम्पन्न होगी ? ... यदि कोई स्थायी आत्मा हो, तभी ज्ञान से संस्कार उत्पन्न हो स्मृति हो सकेगी।"

बौद्ध आत्मा नहीं मानते, यह हम बतला चुके है। क्षणिक विज्ञान को वह अवश्य मानते हैं। वह कहते हैं कि अनुभविता यदि क्षणिक नहीं बल्कि कूटस्थ नित्य है, तो उसमें संस्कार लग ही नही सकता। संस्कार के लिए द्रव पदार्थ की आवश्यकता होती है, कूटस्थ नित्य तो निर्लेप होता है; ब्रह्म या आत्मा को वेदान्ती निर्लेप मानते ही हैं। फिर तो उसमें संस्कार कैसे लगेगा ? इसीलिए ऐसी आत्मा न स्मृति का साधन हो सकती है और न पूर्व कर्मों के संस्कार का।

बौद्ध जगत के मूल उपादान तत्व को विज्ञान का नाम देते हैं। सारे ज्ञान-समुद्र का नाम आलयविज्ञान है, अर्थात जो विज्ञान सबका आलय है। विज्ञान की तरंगों अर्थात विज्ञान के कार्यों को वह प्रवृत्ति विज्ञान कहते हैं। करपात्री महाराज योगाचार दर्शन प्रक्रिया का स्पष्ट ज्ञान न रखने के कारण आलय विज्ञान और प्रवृत्ति विज्ञान के भेद को समझ नहीं पाये। फिर भी वह यह आक्षेप कर ही बैठते है।

"आलय विज्ञान भी क्षणिक है, अतः प्रवृत्ति विज्ञान की तरह वह वासनाधिकरण नहीं हो सकता। किसी नित्य, कूटस्थ सर्वार्थद्रष्टा के न रहने पर देश-काल निमित्तापेक्ष वासनाधीन स्मृति प्रतिसन्धानादि व्यवहार नहीं बन सकता।" (पृ. ७२६)

बेकार के शब्दाडम्बर में सीधी बात को गोलमटोल बनाकर उनके कहने का अभिप्राय यही है कि नित्य आत्मा के न मानने पर अनुभव करनेवालों और स्मृति करनेवालों की एकता नहीं। फिर दूसरे का अनुभव किया हुआ दूसरा कैसे स्मरण कर सकता है ? आलय विज्ञान को यहां घसीटने की आवश्यकता नही, क्योंकि वह विज्ञान समष्टि का नाम है। प्रवृत्ति विज्ञान कूटस्थ नित्य नहीं है, इसीलिए वह संस्कार का वाहक हो सकता है। इस बात को हमने फिल्म के दृष्टान्त से अभी-अभी बतलाया है।

बौद्ध विज्ञानवाद भी हेगेल के विज्ञानवाद की तरह ही सिर नीचे और पैर ऊपर किये शीर्षासन कर रहा था। मार्क्स ने जिस तरह हेगेल को इस सांसत से मुक्त किया, उसी तरह बौद्ध विज्ञानवाद का मुक्ति-दाता भी वही है। मूल तत्व विज्ञान नहीं, बल्कि भौतिक तत्व है। उसीसे वीचीत रंग की तरह विज्ञान की भी उत्पत्ति हुई और संसार के हरेक वस्तु की भी।

४. मार्क्सीय दर्शन

मार्क्सवाद का खंडन करपात्री महाराज के ग्रन्थ का उद्देश्य है, और मुख्य उद्देश्य तो शोषणकर्ता सेठों के स्वार्थ का समर्थन करना है। मार्क्स के दर्शन का खंडन कर वह मायावाद की स्थापना करना चाहते हैं। पर उन्हींके शब्दों में : "मार्क्स प्रयोग तथा अनुभव द्वारा प्राप्त ज्ञान को ही वास्तविक ज्ञान मानता है।" (पृ. ४५६)

मार्क्स ही क्यों, धर्मकीर्ति भी इसी बात को मानते हुए "परमार्थ सत् का अर्थक्रिया समर्थ होना" मानते हैं।

अपने अज्ञान या कौटिल्य को मासूमियत के साथ प्रदर्शित करते हुए करपात्री महाराज कहते हैं :

"अनवस्थित तर्क के आधार पर ही द्वन्द्वमान सिद्धान्त बनाने का प्रयत्न किया जाता है।" (पृ. ४६०)

मार्क्स तर्क से सत्य की स्थापना नहीं मानता, बल्कि लाखों के प्रयोग और अनुभव द्वारा सिद्ध वस्तु को ही सद् मानता है। तर्क की आवश्यकता करपात्री महाराज को हो सकती है, क्योंकि उन्हें सद् की स्थापना अभिप्रेत नहीं है। उनका तर्क अनवस्थित — कहीं ऐसा और कहीं इसके विरुद्ध — हो सकता है। पर मायावादी अपने पक्ष में तर्क की अनवस्थिता को स्वीकार नहीं करते। उदाहरण के लिए :

"सत्यबोधक तर्क या प्रमाणान्तरसंवादी तर्क अप्रतिष्ठित नहीं होता।" (पृ. ४६०)

तर्क की अप्रतिष्ठा की दुहाई महाराज कई बार दे चुके हैं, लेकिन बात की अप्रतिष्ठा से उनको कोई भय नहीं है। जब वह सत्य के खंडन पर उतारू हैं, तब मिथ्या का सहारा लेने में भला क्या आपत्ति हो सकती है ? इसीलिए जब और तरह से नहीं हुआ, तो मार्क्सवाद को बदनाम करने के लिए वह कहते हैं :

"अपने मत के विरुद्ध तथ्य निकालनेवाले वैज्ञानिकों को रूस में फांसी तक की सजा दी गयी है।" (पृ. ६१४)

ऐसी फांसी की सजा का पता तो इतिहास में नहीं मिलता। हां, जान-माल का नुकसान पहुंचाकर राष्ट्र के प्रति विद्रोह करनेवाले अपराधियों को सजाएं देना हरेक राज्य का कर्तव्य है, और ऐसे लोगों को रूस में भी फांसी की सजाएं हुई हैं। इस सम्बंध में हो सकनेवाले अन्याय के प्रति सोवियत संघ के कर्णधार अब और ज्यादा सतर्क हो गये हैं और पिछली कुछ गलतियों को साहस के साथ स्वीकार कर उन्होंने उन्हें दूर भी कर दिया है। यदि वैज्ञानिकों को ऐसी सजाएं दी जातीं, तो रूस में विज्ञान की वह उन्नति नहीं हो सकती थी, जो कि आज देखी जा रही है। आकाश में छोड़े गये रूस के स्पुतिकों—कृत्रिम उपग्रहों—ने यह सिद्ध कर दिया है कि विज्ञान की प्रगति में रूस दुनिया में सबसे आगे है, अमरीका उससे वर्षों पिछड़ा हुआ है। रूस में वैज्ञानिकों का जितना सम्मान है, उतना दुनिया में कहीं नहीं है। वे वस्तुतः वहां देवता की तरह सम्मानित होते हैं। उनका सात खून माफ करने के लिए भी वहां की सरकार तैयार रहती है। महान विज्ञानवेत्ता पावलोव लेनिन और कम्युनिज्म को बहुत बुरा-भला कहते थे। लेकिन लेनिन उन पर यह कह कर हंस देते थे : "हमें उनके काम से मतलब है, जो विज्ञान की बड़ी ठोस देन है। पावलोव की बात का हमें खयाल नहीं करना चाहिए।"

मार्क्सवाद किसी काल्पनिक स्वर्ग के सुख का प्रलोभन देकर जनता को भुलावे में डालना नहीं चाहता। वह इसी दुनिया को स्वर्ग बनाना चाहता है। उसका कहना है कि तुम्हारे सामने जो दुनिया है, वही स्वर्ग में परिणत की जा सकती है। सेठों और शोषकों तथा उनके समर्थक